ENVIRONMENT

विषय सूची

क्रम. सं.	अध्याय	पृष्ट संख्या
1.	पर्यावरण अध्ययन और प्राकृतिक संसाधन	3–12
2.	पारितंत्र	13–29
3.	जैव विविधता	30–41
4.	विकास तथा पर्यावरण प्रदूषण	42–59
5.	सतत् विकास	60–68
6.	समसामजिक मुद्दे	69–88

1. पर्यावरण अध्ययन और प्राकृतिक संसाधन

(Environmental Studies and Natural Resources)

पर्यावरण जैव (सजीव- biotic) और अजैव (निर्जीव- abiotic) घटकों और किसी जीव के आस-पास के व्यवहार, प्रभाव और घटनाओं का कुल योग है।

पर्यावरण के घटक

अजैविक (Abiotic) घटक	जैविक (Biotic) घटक
प्रकाश	पौधे
वर्षण	प्राणी, जिसमें मानव, परजीवी तथा सूक्ष्मजीव भी आते हैं।
आर्द्रता तथा जल	विघटक (Decomposers)
तापमान	
वायुमण्डलीय गैस	
स्थलाकृति	

कोई भी जीव दूसरे जीव के साथ पारस्परिक क्रिया किए बिना अकेला जीवित नहीं रह सकता। सभी जानवर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में हरे पौधों पर ही निर्भर होते हैं। पौधे भी कुछ बातों के लिए जीव-जन्तुओं पर निर्भर होते हैं जैसे फूलों के परागण (Pollination) तथा फलों एव बीजों के प्रकीर्णन के लिए।

पर्यावरण हमारे जीवन का मूल आधार है। यह हमें सांस लेने के लिए हवा, पीने के लिए जल, खाने के लिए भोजन एवं रहने के लिए भूमि प्रदान करता है। भूमि, जल, वायु, पेड़-पौधे एवं जीव-जन्तु मिलकर प्राकृतिक पर्यावरण बनाते है। इसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है।

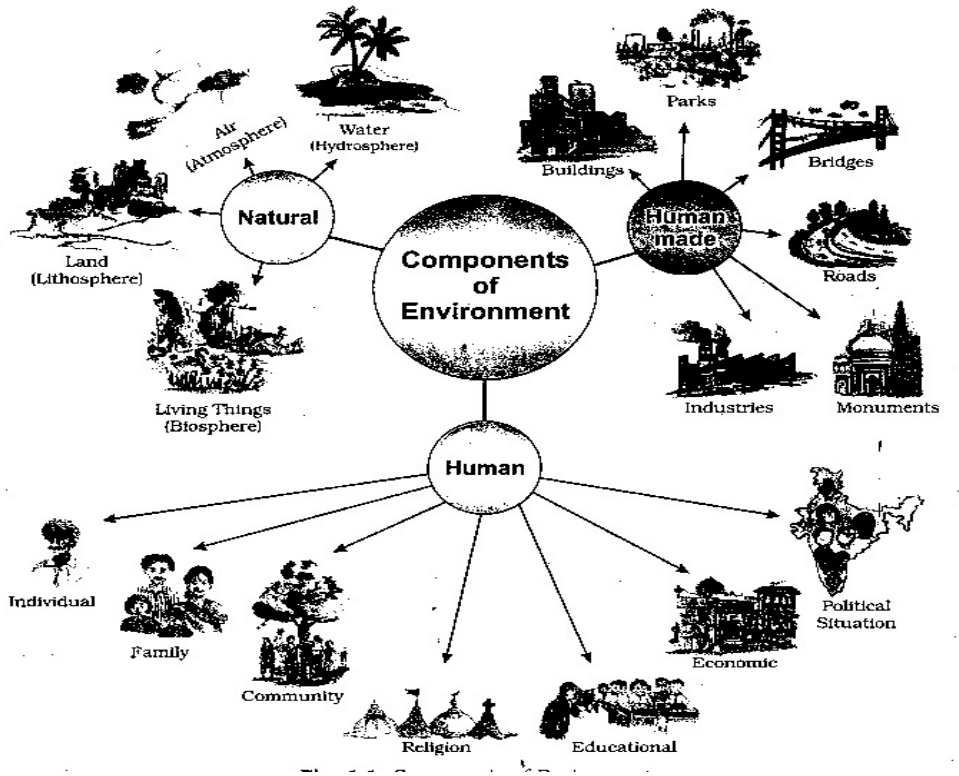

पृथ्वी के संसाधन और मनुष्य (Earth's Resources and Man)

मानवजाति जिन संसाधनों पर निर्भर है वे विभिन्न स्त्रोतों या क्षेत्रें से आते हैं।

1. वायुमंडल (The Atmosphere)

वायुमंडल पृथ्वी के लिए एक रक्षाकवच का काम करता है। **सबसे नीचे का स्तर अर्थात क्षोभमंडल (troposphere) जो केवल 12 किमी मोटा है, और पर्याप्त रूप से इतना गर्म है जिसमें हम जीवित रह सकते हैं। समतापमंडल (stratosphere) 50 किलोमीटर मोटा है और इसमें सल्फेट की एक सतह होती है जो वर्षा कराने के लिए आवश्यक होती है। इसमें ओजोन की एक तह भी होती है जो पराबैंगनी किरणों को, जो कैंसरजनक होती हैं, रोकती है।** ओजोन पर्त के बिना पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं है। वायुमंडल सूर्य के ताप से एक समान गर्म नहीं होता जिसके कारण वायु का प्रवाह होता है तथा पृथ्वी के विभिन्न भागों में जलवायु, तापमान और वर्षा संबंधी अंतर पैदा होते हैं। यह एक पेचीदा गतिशील व्यवस्था है जिसके भंग होने पर पूरी मानवजाति प्रभावित होगी। वायु के अनेक प्रदूषकों के विश्वव्यापी और क्षेत्रीय, दोनों प्रभाव होते हैं। जीवित प्राणी वायु के बिना कुछ पलों तक भी जीवित नहीं रह सकते। जीवित रहने के लिए स्वच्छ वायु चाहिए। अनेक वायुप्रदूषक उन औद्योगिक इकाइयों से पैदा होते हैं जो वायु में कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड और विषैला धुंआ छोड़ते हैं। वायु जीवाश्म ईंधन जलाने से भी प्रदूषित होती है। **वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड का जमाव, जिसे हम 'हरितगृह प्रभाव' (green house effect) भी कहते हैं, आज की विश्वव्यापी उष्णता (global warming) का कारण है।** जीवाश्म ईंधन (पेट्रोल और डीजल) पर चलने वाली स्कूटरों, मोटरसाइकिलों, कारों, बसों और ट्रकों की बढ़ती संख्या नगरों में और राजमार्गों पर वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण है।

निचले वायुमण्डल (80 किलोमीटर से नीचे) में जल वाष्प को छोड़कर शेष गैसों के आपेक्षिक अनुपात

गैस	आयतन के अनुसार प्रतिशत
नाइट्रोजन	78.08
ऑक्सीजन	20.95
आर्गन	0.93
कार्बन डाइऑक्साइड	0.03
हीलियिम	0.00052
नीऑन	0.0018
क्रिप्टॉन	0.00010
मीथेन	0.00015
हाइड्रोजन	0.00005
नाइट्रस ऑक्साइड	0.00005
जीनॉन	0.000009
ओजोन	0.000007

2. जलमंडल (Hydrosphere)

जलमंडल पृथ्वी के तीन-चौथाई भाग पर फैला हुआ है। समुद्री पारितंत्र जलमंडल का एक बड़ा भाग है, जबकि ताजा जल इसका एक मामूली भाग ही है। नदियों, झीलों और हिमालयों के ताजे जल का नवीनीकरण वाष्पीकरण और वर्षा द्वारा होता रहता है; इसमें से कुछ जल भूमिगत जलाशयों में जमा होता रहता है। वनविनाश जैसे मानवीय कार्यकलाप जलमंडल में गंभीर परिवर्तन लाते हैं। भूमि जब वनस्पति के आवरण से खाली हो जाती है तो वर्षा मिट्टी को काटती है जो बहकर समुद्र में चली जाती है।

उद्योगों से रसायन और गंदा जल नदियों में और फिर सागर में पहुंचता रहता है। इस तरह जल प्रदूषण प्राणी समुदायों के स्वास्थ्य के लिए जोखिम पैदा करता है क्योंकि हमारा जीवन साफ पानी की उपलब्धता पर निभर है। कभी का यह प्रचुर संसाधन प्रदूषण के कारण अब दुर्लभ और महंगा होता जा रहा है।

3. स्थलमंडल (Lithosphere)

स्थलमंडल का आरंभ पदार्थ के एक गर्म गोले के रूप में हुआ जिससे कोई 4.6 अरब साल पहले पृथ्वी बनी। लगभग 3.2 अरब वर्ष पहले तक पृथ्वी काफी ठंडी हो चुकी थी और तब एक बहुत विशेष घटना घटी–हमारे ग्रह पर जीवन का आरंभ हुआ। पृथ्वी की पपड़ी (पर्पटी) छह-सात किमी मोटी है और महाद्वीपों के नीचे है। **स्थलमंडल के 92 तत्त्वों में केवल आठ ही भूतल पर स्थित चट्टानों के आम घटक हैं। इन घटकों में 47 प्रतिशत आक्सीजन, 28 प्रतिशत सिलिकन, आठ प्रतिशत एल्यूमिनियम और पांच प्रतिशत लोहा है जबकि सोडियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम और कैल्शियम चार-चार प्रतिशत हैं।** ये तत्त्व मिलकर कोई दो सौ आम खनिज यौगिकों का निर्माण करते हैं। चट्टानें टूटकर मिट्टी बनती है जिस पर मानव खेती के लिए निर्भर है। उनके खनिज भी विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चे माल होते हैं।

4. जैवमंडल (Biosphere)

जैवमंडल पृथ्वी की अपेक्षाकृत पतली तह है जिस पर जीवन संभव है। **इसके अंदर वायु, जल, चट्टानें, मिट्टी और जीवित प्राणी पारिस्थितिकी (ecology) की वे ढांचागत (structural) और प्रकार्यात्मक (functional) इकाइयां हैं जिनको कुल मिलाकर एक विशाल विश्वव्यापी जीवन व्यवस्था, हमारी पृथ्वी की जीवन व्यवस्था माना जा सकता है।** इस ढांचे के अंदर, मोटे तौर पर समान भूगोल और जलवायु तथा पौधों और जीवों के समुदायों वाले क्षेत्रों को हम अपनी को सुविधा के लिए विभिन्न जैव-भौगोलिक क्षेत्रों (biogeographical realms) में बांट सकते हैं। ये विभिन्न महाद्वीपों में पाए जाते हैं। इनमें भी और छोटी जैव-भौगोलिक क्षेत्रों को ढांचागत भिन्नता और प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के आधार पर सुस्पष्ट और पहचान योग्य पारितंत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है जो किसी भूदृश्य या जलदृश्य को एक विशिष्ट चरित्र प्रदान करते हैं। उनकी देखने और पहचान में आसान विशेषताओं का वर्णन विभिन्न स्तरों पर किया जा सकता है, जैसे देश, राज्य या जिला के स्तर पर, यहां तक कि वादी, पर्वतमाला, नदी या झील के स्तर पर भी।

मंडलों के बीच विभिन्न चक्र (Natural cycles between the spheres) : ये चारों मंडल घनिष्ठ संबंधों में बंधी प्रणालियां हैं और एक-दूसरे की अखंडता के लिए परस्पर निर्भर हैं। हमारे पर्यावरण के किसी एक मंडल में विघ्न पड़ने पर दूसरे सभी मंडल प्रभावित होते हैं।

उनके बीच संबंध मुख्यत: चक्रों के रूप में होता है। उदाहरण के तौर पर वायुमंडल, जलमंडल और स्थलमंडल सभी जल-चक्र के द्वारा आपस में संबंधित हैं। जलमंडल (समुद्री और ताजे जल के पारितंत्रों) से वाष्प बनने वाला जल वायुमंडल में जाकर बादल बनता है। यह बादल संघनित होकर वर्षा के रूप में गिरता है जिससे स्थलमंडल को नमी मिलती है जिस पर जीवन निर्भर है। वर्षा चट्टानों के अपरदन (कटाव) का कारण भी है और लाखों वर्षों में इसने वह मिट्टी पैदा की है जिस पर पौधों की वृद्धि होती है। पवन रूप में वायुमंडल की गतिविधियां भी चट्टानों को तोड़कर मिट्टी बनाती हैं। सबसे संवेदनशील और जटिल संबंध एक ओर वायुमंडल, जलमंडल और स्थलमंडल तथा दूसरी ओर जैवमंडल में रहने वाले लाखों प्राणियों के बीच के संबंध होते हैं। पृथ्वी पर रहने वाले तमाम प्राणी स्थलमंडल और जलमंडल की उसी अपेक्षाकृत पतली तह में रहते हैं जो भूमि और जल की सतह पर पाई जाती है। वे जिस जैवमंडल का निर्माण करते हैं उसके तीन अन्य 'मंडलों' के विभिन्न भागों के साथ अनगिनत संबंध होते हैं।

इसलिए इन अलग-अलग इकाइयों-मिट्टी, जल, वायु और जीवित प्राणियों-के अंत: संबंधों को समझना तथा पारितंत्रों को उनकी समग्रता में सुरक्षित रखने के महत्त्व को जानना आवश्यक है।

नवीकरणीय और अनवीकरणीय संसाधन

अनवीकरणीय संसाधन (Non-renewable resources)

ये वे खनिज हैं जो स्थलमंडल में लाखों वर्षों के दौरान बने और ये बंद प्रणाली (closed system) के अंग हैं। एक बार उपयोग के बाद ये अनवीकरणीय संसाधन पृथ्वी पर भिन्न रूपों में रहते हैं और अगर उनका समुचित पुनर्चालन न किया जाए तो व्यर्थ पदार्थ बन जाते हैं।

अनवीकरणीय संसाधनों में तेल और कोयला जैसे जीवाश्म ईंधन हैं जो अगर आज की गति से निकाले जाते रहे तो जल्द ही समाप्त हो जाएंगे। जीवाश्म ईंधन के अंतिम उत्पाद हैं गर्मी, यांत्रिक ऊर्जा और रासायनिक यौगिक जिनका संसाधन रूप में पुनर्निर्माण नहीं किया जा सकता।

नवीकरणीय संसाधन (Renewable resources)

हालांकि जल और जैविक संसाधनों को नवीकरणीय माना जाता है, लेकिन वे वास्तव में कुछ सीमाओं के अंदर ही नवीकरणीय हैं। उनका संबंध प्राकृतिक चक्रों से होता है, जैसे जल-चक्र से।

- ताजे जल का (उपयोग के बाद भी) सूरज की ऊर्जा से वाष्पीकरण होता है। जल वाष्प बनता है, फिर वह बादलों का रूप लेता है जो पृथ्वी पर वर्षा रूप में गिरता है। लेकिन जल के स्त्रोतों का इतना अधिक उपयोग और अपव्यय हो सकता है कि स्थानीय स्तर पर वे सूख जाएं। गंदे नालों और विषैले पदार्थों से जल के स्रोत इतनी बुरी तरह प्रदूषित हो सकते हैं कि जल का उपयोग असंभव हो जाए।
- वन यदि एक बार नष्ट हो जाएं तो प्रजातियों की भरपूर संख्या के साथ पूर्ण विकसित प्राकृतिक पारितंत्रों के रूप में उनके फिर से बढ़ने में हजारों वर्ष लग सकते हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि अति-उपयोग की स्थिति में वन अनवीकरणीय संसाधनों की तरह व्यवहार करते हैं।

(क) वन संसाधन (Forest Resources)

उपयोग और अति-शोषण (Use and overexploitation) : वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आदर्श रूप में भारत की 33 प्रतिशत भूमि पर वन होने चाहिए। आज हमारे पास केवल 12 प्रतिशत जंगलाती भूमि है। इस तरह हमारे लिए केवल मौजूदा वनों को सुरक्षित रखना ही नहीं, बल्कि अपना वन्य आवरण भी बढ़ाना आवश्यक है।

वनविनाश (Deforestation) : जिन सभ्यताओं ने वन संसाधनों का सावधानी से उपयोग किया है और वनों की देखभाल की है, वे फली-फूली हैं जबकि उनका विनाश करने वाली सभ्यताओं का धीरे-धीरे ह्रास होता गया है। आज हमारे देश में और संसार भर में लकड़ी की कटाई और खनन कार्य वनों की क्षति के मुख्य कारण हैं। जलविद्युत (पनबिजली) या सिंचाई के लिए बनाए गए बांधों के कारण बड़े-बड़े वनक्षेत्र डूबे हैं और वह आदिवासी जनता विस्थापित हुई है जिसका जीवन वनों से गहराई से जुड़ा हुआ था। यह भारत में गंभीर चिंता का विषय बना हुआ है।

इसे महसूस करके पर्यावरण और वन मंत्रालय ने राष्ट्रीय वन नीति 1988 बनाई जिसमें वनों के संयुक्त प्रबंध (Joint First Management-JFM) को पर्याप्त महत्त्व दिया गया था। इसमें वनों के निर्वहनीय प्रबंध के लिए स्थानीय ग्रामीण समुदाय और वन विभाग मिलकर काम करते हैं। 1990 के एक और प्रस्ताव के द्वारा ग्राम वन समितियों (Village Forest Committees-VFCs) के गठन के रूप में समुदाय की भागीदारी को औपचारिक शक्ल मिली। इस कार्यक्रम के आरंभ के बाद 2002 तक भारत के 27 राज्यों में संयुक्त वन प्रबंध की 63,618 समितियां 140,953 वर्ग किमी क्षेत्र में वनों की देखभाल कर रही थीं।

(ख) जल संसाधन (Water Resources)

जल-चक्र वाष्पीकरण और अवपात (precipitation) के द्वारा जलीय व्यवस्थाओं को बनाए रखता है जिनसे नदियां और झीलें बनती हैं तथा अनेक प्रकार के जलीय पारितंत्रों को सहारा मिलता है। नमभूमियां स्थलीय और जलीय पारितंत्रों के बीच के रूप हैं और उनमें पौधों और जीवों की ऐसी प्रजातियां पाई जाती हैं जो नमी पर अत्यधिक निर्भर होती हैं। जनता पीने का पानी, कपड़े धोने, भोजन पकाने, मवेशियों को पिलाने और खेतों की सिंचाई करने के लिए जलीय पारितंत्रों का उपयोग करती है। फिर भी संसार ताजे जल की सीमित मात्रा पर ही चल रहा है।

अनुमान है कि भारत पर 2025 तक जल को लेकर भारी दबाव पड़ेगा। विश्वस्तर पर अभी भी 31 देशों को जल की कमी का सामना करना पड़ रहा है जबकि 2025 तक जल की गंभीर समस्या से 48 देश ग्रस्त होंगे। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि 2050 तक नौ अरब लोगों को गंभीर जल संकट का सामना करना पड़ेगा। इसके कारण जल के बंटवारे के लिए देशों के बीच अनेक टकराव होंगे। भारत के कोई 20 प्रमुख नगर लगातार या बीच-बीच में जल की कमी का सामना कर रहे हैं। 100 देश 13 बड़ी नदियों और झीलों के पानी में हिस्सेदार हैं। भौगोलिक रूप से ऊपर स्थित जलापूर्त देश नीचे स्थित जलाभाव वाले देशों के लिए, जल की आपूर्ति में बाधा पैदा कर सकते हैं जिससे दुनिया में राजनीतिक अस्थिरता पैदा हो सकती है। उदाहरण के लिए, इथियोपिया जो भौगोलिक रूप से ऊपर नील नदी के उद्गम पर स्थित है और मिस्र जो भौगोलिक रूप से नीचे नील के मुहाने वाले भाग में स्थित है और नील पर बहुत अधिक निर्भर है। विश्वशांति के हित में ऐसे अंतर्राष्ट्रीय समझौते अनिवार्य हो जाएंगे जो ऐसे क्षेत्रों में जल का न्यायोचित वितरण संभव बनाएं। भारत और बांग्लादेश गंगा नदी के जल के उपयोग को लेकर पहले ही एक समझौता कर चुके हैं।

(ग) खनिज संसाधन (Mineral Resources)

खनिज एक सुनिश्चित रासायनिक संरचना और सुस्पष्ट भौतिक गुणों वाला, प्रकृति में मिलने वाला पदार्थ होता है। एक अयस्क ऐसा उपयोगी या खनिजों का संयोग है जिससे धातु जैसी कोई उपयोगी वस्तु प्राप्त की जा सके और उपयोगी वस्तुएं बनाने में जिसका प्रयोग किया जा सके।

पृथ्वी की पर्पटी में खनिज को बनने में लाखों वर्षों का समय लगता है। लोहा, एल्यूमिनियम, जस्ता, मैंगनीज और तांबा औद्योगिक उपयोग वाले महत्त्वपूर्ण कच्चे माल हैं। महत्त्वपूर्ण गैर-धातु संसाधनों में कोयला, नमक, मिट्टी, सीमेंट और सिलिका शामिल हैं। खनिजों की एक और श्रेणी इमारतों के निर्माण में प्रयुक्त पत्थर, जैसे ग्रेनाइट, संगमरमर, चूनापत्थर है। हीरे, पन्ने और लाख जैसे कीमती पत्थर ऐसे विशेष गुणों वाले खनिज हैं जिनको मनुष्य उनके सौंदर्य और आभूषण संबंधी मूल्य के कारण महत्त्व देता है। सोने, चांदी और प्लैटिनम की चमक-दमक का उपयोग गहनों में किया जाता है। तेल, गैस और कोयला जैसे खनिज तब बने जब प्राचीन काल में पौधे और मृत पशु भूमिगत जीवाश्म ईंधनों में बदल गए।

खनिजों और उनके अयस्कों (ores) को उपयोग के लिए भूगर्भ से निकालना पड़ता है। इस प्रक्रिया को खनन (mining) कहते हैं।

खदान सुरक्षा (Mine safety) : खनन जोखिम भरा काम है और खदान मजदूरों की सुरक्षा खनन उद्योग के लिए पर्यावरण संबंधी एक महत्त्वपूर्ण विषय है। खुली खदान भूमिगत खदान से कम खतरनाक होती है और धातु का खनन कोयले के खनन से कम खतरनाक होता है। तमाम भूमिगत खदानों में चट्टानों और छतों का गिरना, जलभराव और वायु का अपर्याप्त प्रवाह सबसे बड़े जोखिम होते हैं। कोयले की खदानों में भारी विस्फोट हुए हैं और अनेक मजदूर मारे गए हैं। धातुओं वाली खदानों में विस्फोटकों के उपयोग से पैदा विपत्तियों में और भी मजदूर मारे जा चुके हैं।

खनन खननकर्मियों के लिए अनेक दीर्घकालिक व्यावसायिक जोखिम पैदा करता है। खनन कार्य के दौरान उड़ने वाली धूल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है और फेफड़े का एक रोग पैदा करती है, जिसे ''काला फेफड़ा'' या न्यूमोकोनियोसिस (pneumoconiosis) कहते हैं। डायनामाइट के अधुरे धमाकों से पैदा धुआं बेहद जहरीला होता है। कोयले की तहों से निकलने वाली मिथेन गैस स्वास्थ्य के लिए हानिकार होती है, हालांकि यह खदान की हवा में आम तौर पर जिस अनुपात में पाई जाती है उसमें जहरीली नहीं होती। यूरेनियम की खदानों में विकिरण (radiation) एक ऐसा जोखिम है जो जानलेवा हो सकता है।

पर्यावरण की समस्याएं (Environmental Problems) : खनन कार्यों को पर्यावरण के ह्रास के प्रमुख स्रोतों में गिना जाता है। स्थलमंडल से इन सभी वस्तुओं की निकासी के अनेक पार्श्व प्रभाव (side-effects) होते हैं। खनन के कारण भूमि की उपलब्धता में कमी, उद्योगों के अपशिष्ट, भूमि का औद्योगिक उपयोग तथा औद्योगिक अपशिष्टों के कारण भूमि, वायु और जल का प्रदूषण-ये सब इन अनवीकरणीय संसाधनों के पर्यावरण संबंधी पार्श्व प्रभाव हैं। इस समस्या पर विश्व की जनता जागरूक है और प्राकृतिक पर्यावरण की क्षति को रोकने के लिए सरकारी कार्रवाईयों ने अनेक अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को जन्म दिया है। इसके कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकने वाली गतिविधियों और घटनाओं की रोकथाम के लिए कानून भी बनाए गए हैं।

(घ) खाद्य संसाधन (Food Resources)

आज हमारा भोजन पूरी तरह कृषि, पशुपालन और मछलियों पर निर्भर है। हालांकि भारत खाद्य-उत्पादन में आत्मनिर्भर है, पर इसका कारण कृषि की आधुनिक विधियां हैं जो पूरी तरह अनिर्वहनीय हैं और जो रासायनिक खादों और कीटनाशकों का अति-उपयोग करके हमारे पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं।

खाद्य और कृषि संगठन निर्वहनीय कृषि की परिभाषा ऐसे कृषि के रूप में करता है जो भूमि, जल तथा पौधा और प्राणी रूपी संसाधनों को सुरक्षित रखे, पर्यावरण का ह्रास न करे, तथा आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक और सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य हो। हमारे अधिकांश बड़े फार्म एक फसल उगाते हैं। अगर इस फसल को कीड़े लग जाएं तो पूरी फसल नष्ट हो सकती है और किसान को उस साल कोई आय नहीं होती। दूसरी ओर, किसान अगर परंपरागत किस्मों का प्रयोग करें और अनेक अलग-अलग फसलें उगाएं तो पूरी असफलता की संभावना काफी घट जाती है। अनेक अध्ययनों से स्पष्ट है कि अकार्बनिक खादों और कीटनाशकों के विकल्पों का उपयोग किया जा सकता है। इसे समन्वित फसल प्रबंध (Integrated Crop Management) कहते हैं।

खाद्य सुरक्षा (Food security) : अनुमान है **कि संसार में हर साल 1.8 करोड़ व्यक्ति, जिनमें अधिकांश स्त्रियां या बच्चे हैं, भूख या कुपोषण से मर जाते हैं। बहुत-से दूसरे व्यक्ति भोजन में अनेक प्रकार की अपर्याप्ताओं को झेलते हैं।**

पृथ्वी हमें सीमित मात्रा में ही भोजन दे सकती है। अगर विश्व की खाद्य उत्पादन की क्षमता बढ़ती आबादी की जरूरतें पूरी न कर सकी तो अराजकता और टकरावों का जन्म होगा। इस तरह परिवार कल्याण कार्यक्रम के द्वारा जनसंख्या के नियंत्रण से खाद्य सुरक्षा का गहरा संबंध है। इसका संबंध कृषि के लिए जल की उपलब्धता से भी है। खाद्य सुरक्षा तभी संभव है जब खाद्य पदार्थों का समान वितरण हो। हममें से बहुत लोग लापरवाही से ढेरों भोजन बरबाद करते हैं। इससे हमारे पर्यावरणीय संसाधनों पर अंततः दबाव पड़ता है।

एक और प्रमुख आवश्यकता है छोटे किसानों को हरसंभव सहायता मुहैय्या कराने की ताकि वे नगरों में जाकर अकुशल औद्योगिक श्रमिक न बनें और किसान ही रहें। जिन देशों के पास अतिरिक्त खाद्य पदार्थ हैं उनसे विकासशील देशों के कम खाद्य पदार्थों वाले देशों की ओर, राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार, इन वस्तुओं के प्रवाह में वृद्धि की अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक नीतियां अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित योजनाकारों के लिए एक अन्य प्रमुख विषय है। अविकसित देशों के बाजारों में विकसित दुनिया के खाद्य पदार्थों की लागत से कम दाम पर 'उतराई' (dumping) से फसलों की कीमतें गिरती हैं और किसानों को प्रतियोगिता अनिर्वहनीय विधियां अपनाने पर मजबूर करती है।

खाद्य के वैकल्पिक स्रोत (Alternate food sources) : अगर हम खेती के मौजूदा तरीकों को छोड़ सकें तो प्रवर्तनकारी ढंग से खाद्य पदार्थों का उत्पादन हो सकता है। इसमें खाद्य उत्पादन के नए रास्तों को आजमाना भी शामिल है, जैसे लकड़ी छोड़ दूसरी पैदावारों के लिए वनों का उपयोग करना। अगर इन पैदावारों का निर्वहनीय दोहन किया जाए तो इनका उपयोग भोजन के लिए किया जा सकता है। इनमें फल, खुंबियाँ, रस, गोंद आदि शामिल हैं। इसमें निश्चित रूप से समय लगेगा क्योंकि लोगों को इन नए खाद्य पदार्थों के स्वाद का अभ्यस्त बनाना होगा।

पहाड़ों की ढालों पर कम उपजाऊ मिट्टी में पैदा होने वाली नगली (Nagli) जैसी अपरिचित फसलों का उपयोग एक अन्य विकल्प है। पश्चिमी घाट की इस फसल के लिए आज कोई बाजार नहीं है और यह शायद इसीलिए कम उगाई जाती है। केवल स्थानीय जनता ही इस पौष्टिक फसल को खाती है। इसलिए पहले की तरह इसकी आज व्यापक रूप से खेती नहीं की जाती। इस फसल को लोकप्रिय बनाया जाए तो हाशियाई जमीनों से खाद्य की उपलब्धता बढ़ सकती है। नगरीय परिवेशों में सब्जियों और फलों समेत अनेक ऐसी फसलें उगाई जा सकती हैं जो घरों के बेकार पानी और कृमिकम्पोष्ट गड्ढों से प्राप्त खादों की सहायता से उगाई जा सकें।

अभी तक अप्रयुक्त समुद्री खाद्य पदार्थों से, मसलन समुद्री घास से, प्राप्त भोजन को लोकप्रिय बनाया जा सकता है, बशर्ते यह काम निर्वहनीय ढंग से किया जाए। पोषाहार के बारे में स्त्रियों को शिक्षित करना, जो परिवार के खानपान से गहराई से जुड़ी होती हैं, अनेक विकासशील देशों में खाद्य की आवश्यकताओं की पूर्ति का एक अहम् पहलू है।

समन्वित कीट प्रबंध (Integrated Pest Management) में कीटभोजी प्राणियों का संरक्षण पौधों की कीट-प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग और रासायनिक खादों के उपयोग में कमी शामिल हैं। निर्वहनीय खाद्य उत्पादन के लिए भी इसका व्यवहार किया जाना चाहिए।

अनवीकरणीय ऊर्जा के स्रोत (Non-renewable energy sources) : इनमें कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस आते हैं जो खनिज रूप में प्राप्त हाइड्रोकार्बन ईंधन हैं; इनका निर्माण प्राचीन प्रागैतिहासिक वनों से हुआ। **इन्हें 'जीवाश्म ईंधन' (fossil fuels) कहते हैं क्योंकि ये पौधों के जीवाश्म बनने से पैदा हुए। दोहन की मौजूद दर से कोयला अभी लंबे समय तक चलेगा। लेकिन तेल और गैस संसाधन अगले 50 वर्षों में समाप्त हो सकते हैं।** ये ईंधन जलने पर व्यर्थ पदार्थ पैदा करते हैं जो कार्बन डाइआक्साइड, गंधक और नाइट्रोजन के आक्साइडों और कार्बन मोनोआक्साइड के रूप में वातावरण में चले जाते हैं और वातावरण को प्रभावित करते हैं।

तेल और पर्यावरण पर उसका प्रभाव (Oil and its environmental impacts) : तेल से चलने वाले वाहन कार्बन डाइआक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रस आक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड और कण पदार्थ छोड़ते हैं जो वायु प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है, विशेषकर भारी यातायात वाले नगरों में। **सीसायुक्त पेट्रोल स्नायुतंत्र को हानि पहुंचाता है तथा एकाग्रता कम करता है।**

सभी नई कारों में कैटेलिटिक कनवर्टर (catalytic converters) लगाकर सीसारहित पेट्रोल से उन्हें चलाया जा सकता है, पर सीसारहित पेट्रोल से उन्हें चलाया जा सकता है, पर सीसारहित पेट्रोल में बेंजीन (benzene) और ब्यूटेडीन (butadine) होते हैं जो कैंसरजनक यौगिकों (carcinogenic compounds) के रूप में जाने जाते हैं। दिल्ली में, जहां भारी यातायात ने धूमकोहारा (smog) की गंभीर समस्याएं पैदा कर दी थीं, बड़ी संख्या में वाहनों को सी एन जी (CNG) वाहनों में बदलकर स्वास्थ्य संबंधी इस खतरे को कम किया गया है। इस सी इन जी में मिथेन गैस होती है।

जीवाश्म ईंधन के घटते संसाधनों पर, विशेषकर तेल पर, भारी निर्भरता राजनीतिक तनाव, अस्थिरता और युद्ध को जन्म दे रही है। इस **समय संसार का 65 प्रतिशत तेल का भंडार मध्यपूर्व (Middle East) के देशों में स्थित है।**

कोयला और पर्यावरण पर उसका प्रभाव (Coal and its environmental impacts) : कोयला दुनियाभर में हरितगृह प्रभाव का अकेला सबसे बड़ा जन्मदाता और विश्वव्यापी उष्णता के सबसे महत्त्वपूर्ण कारणों में एक है।

कोयला से चलने वाले अनेक विद्युत संयंत्रों में स्थिर-विद्युत अवक्षेपकों (electrostatic precipitants) जैसे उपकरण नहीं हैं जो निलंबित कण पदार्थ (suspended particulate matter-SPM), जो वायु का एक प्रमुख प्रदूषक है, के प्रदूषण को कम करें। कोयला जलने पर गंधक और नाइट्रोजन की आक्साइडें भी पैदा करता है जिनके जलवाष्प से मिलने पर 'अम्लीय वर्षा' होती है। इससे जंगलों की हरियाली नष्ट होती है, स्मारकों की क्षति होती है, जल प्रदूषित होता है और मानव का स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

कोयला से चलने वाले विद्युत संयंत्र 'फ्लाई-ऐश' के रूप में अपशिष्ट पैदा करते हैं। इससे निबटने के लिए बड़े-बड़े कूड़ास्थान बनाने पड़ते हैं। फ्लाई-ऐश से ईटें बनाने के लिए भी कुछ प्रयास किए गए हैं। बड़ी मात्रा में पैदा होने वाले फ्लाई-ऐश के यातायात और उनको ठिकाने लगाने की लागत को भी ताप-ऊर्जा के लागत-लाभ विश्लेषण में शामिल करना आवश्यक है।

नवीकरणीय ऊर्जा (Renewable Energy)

नवीकरणीय ऊर्जा की प्रणालियों में ऐसे संसाधनों का उपयोग होता है जिनकी बराबर भरपाई होती है और ये अकसर कम प्रदूषकजनक होते हैं। कुछ उदाहरण हैं: जल विद्युत, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा भूताप ऊर्जा (अर्थात पृथ्वी के अंदर की गर्मी से प्राप्त ऊर्जा)। हम ईंधन के रूप में पेड़ और कचरा जलाकर तथा दूसरे पौधों को जैव-ईंधन में बदलकर भी नवीकरणीय ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

हो सकता है एक दिन ऐसा भी आए कि हमारे सभी घरों को सूर्य या वायु से ऊर्जा मिले, आपकी कार संभवत: जैव-ईंधन से चले और आपके नगर के कचरे से नगर की विद्युत-आपूर्ति की आंशिक पूर्ति हो। नवीकरणीय ऊर्जा की तकनीकें ऊर्जा प्रणालियों की दक्षता बढ़ाएंगी और लागत कम करेंगी। हम उस मंजिल पर तब पहुंचेंगे जब हम जीवाश्म ईंधनों की ऊर्जा पर निर्भर नहीं होंगे।

जल विद्युत/पनबिजली (Hydroelectric Power)

इसमें नदियों पर बांध बनाकर प्राकृतिक ढाल से नीचे गिर रहे पानी का उपयोग करके टरबाइनें चलाई जाती हैं जिससे बिजली पैदा होती है। इसे जल विद्युत कहते हैं।

जल विद्युत की त्रुटियां : जल विद्युत के कारण संसारभर में आर्थिक प्रगति हुई है। लेकिन इसने पर्यावरण संबंधी कुछ गंभीर समस्याएं भी पैदा की हैं।

- ☞ जल विद्युत पैदा करने के लिए बड़े-बड़े कृषि और जंगलाती क्षेत्र डूबा दिए जाते हैं। ये जमीन स्थानीय निवासियों और किसानों की जीविका का स्रोत होती हैं। अत: भूमि के उपयोग के मुद्दे पर टकराव होना अपरिहार्य है।
- ☞ जलाशयों में (विशेषकर वनविनाश के कारण) गाद बैठने से जल विद्युत संयंत्रों का जीवन कम होता है।
- ☞ जल विद्युत उत्पादन के अलावा जल का प्रयोग अनेक कार्यों में होता है। इनमें घरेलू, खेतिहार और औद्योगिक उपयोग शामिल हैं। इससे जल के समतामूलक वितरण के लिए टकराव होता है।
- ☞ विद्युत उत्पादन के लिए बांध बनने पर नौकाचालन और मछलीपालन के लिए नदियों का उपयोग कठिन हो जाता है।
- ☞ विस्थापित व्यक्तियों का पुनर्वास एक समस्या है जिसका कोई हल नहीं है। अनेक बड़ी जल विद्युत परियोजनाओं का विरोध बढ़ रहा है, क्योंकि अनेक बांध परियोजनाएं प्रभावित लोगों के पुनर्वास या पर्याप्त क्षतिपूर्ति में असफल रही हैं।

☞ कुछ भूकंप-संभावित क्षेत्रों में बड़े बांध भूकंप का कारण बन सकते हैं, जैसे हिमालय की तराई में स्थित टेहरी बांध। टेहरी बांध के आसपास के इलाके में इसकी भारी संभावना है। चिपको आंदोलन के प्रवर्तक श्री सुंदरलाल बहुगुणा ने वर्षों तक टेहरी बांध के खिलाफ संघर्ष किया।

सौर ऊर्जा (Solar energy) : एक घंटे में सूरज पृथ्वी को इतनी ऊर्जा देता है जितने का हम साल भर में उपयोग करते हैं। ऊर्जा की इस विराट मात्रा को यदि बांधकर रखना संभव होता तो मानवजाति को ऊर्जा के किसी और स्रोत की आवश्यकता नहीं पड़ती। आज पानी गर्म करने और बिजली पैदा करने के लिए इस ऊर्जा के संग्रह के अनेक तरीके विकसित किए जा चुके हैं।

घरों के लिए सौर ऊष्मा (Solar heating for houses) : वातानुकूलन और/या उष्मा का उपयोग करने वाले आधुनिक आवास ऊर्जा पर बहुत अधिक निर्भर हैं। एक सौर आवास या भवन की रूपरेखा ऐसी होती है कि वह दक्षिण की ओर रुख वाली बड़ी-बड़ी, शीशे की खिड़कियों से सूरज की गर्मी का संग्रह कर सके। सौर भवन में दक्षिण दिशा में सूर्यस्थल (sunspaces) बनाए जाते हैं और वे बड़े ऊष्मा अवशोषकों की तरह काम करते हैं। इन सूर्यस्थलों के फर्श टाइलों और ईटों के बने होते हैं जो दिन भर गर्मी सोखते रहते हैं और रात में ठंड बढ़ने पर उसे धीरे-धीरे छोड़ते जाते हैं।

फोटोवोल्टीय ऊर्जा (Photovoltaic energy) : दुनियाभर में जिस सौर प्रौद्योगिकी के उपयोग की सबसे अधिक संभावना है वह फोटोवोल्टीय सेलों की प्रौद्योगिकी है। यह फोटोवोल्टीय सेलों (या सौर सेलों) का उपयोग करके सूरज की रोशनी को सीधे बिजली में परिवर्तित करती है।

सौर सेल बिजली बनाने के लिए सूरज की गर्मी नहीं, रोशनी का उपयोग करते हैं। इनका रखरखाव बहुत आसान होता है, कोई गतिशील भाग नहीं होता और मूलत: पर्यावरण पर ये कोई प्रभाव नहीं डालते। ये सफाई, सुरक्षा और खामोशी के साथ काम करते हैं। जहां भी सूरज की रोशनी हो, वहां इन्हें छोटे-से स्थान में तुरंत लगाया जा सकता है। सौर सेल सिलिकन (silicon) की दो अलग-अलग तहों से बने होते हैं, जिनमें प्रत्येक का एक विद्युत आवेश होता है। सेलों पर रोशनी पड़ती है तो दोनों तहों के बीच आवेश गति करते हैं और बिजली पैदा होती है। इन सेलों को तारों से जोड़कर एक माड्यूल (module) बनाया जाता है। कोई 40 सेलों का एक माड्यूल एक बल्ब जलाने के लिए काफी होता है। अधिक ऊर्जा के लिए माड्यूल को तारों से जोड़कर एक सरणी (array) बनाई जाती है। ये सरणियां एक घर में बिजली की जरूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा पैदा कर सकती हैं। पिछले कुछ वर्षों में प्रौद्योगिकी की लागत घटाने, दक्षता बढ़ाने और सेलों का जीवन बढ़ाने संबंधी गहन कार्य किए गए हैं। लागत घटाने और उत्पादन को स्वचालित बनाने के लिए रवाहीन (amorphous) सिलिकन जैसी अनेक नई सामग्रियों को आजमाया जा रहा है।

आज कैल्कुलेटरों और घड़ियों में इन सेलों का खूब प्रयोग हो रहा है। ये उपग्रहों, विद्युत प्रकाश, रेडियों जैसे छोटे उपकरणों के लिए, पानी के पंपों, राजमार्गों पर प्रकाश, मौसम विज्ञान के केंद्रों के लिए तथा विद्युत प्रणालियों के लिए भी ऊर्जा प्रदान करते हैं। बिजली की आपूर्ति करने वाली कुछ कंपनियां अपने आपूर्ति के नेटवर्कों में ऐसे सेलों की प्रणालियां शामिल कर रही हैं।

जैवभार ऊर्जा (Biomass energy) : लकड़ी का एक कुंड जब जलाया जाता है तो हम जैवभार ऊर्जा का प्रयोग कर रहे होते हैं। पेड़-पौधों को बढ़ाने के लिए सौर ऊर्जा चाहिए। इसलिए जैवभार ऊर्जा जमा सौर ऊर्जा का एक रूप है। यूं तो लकड़ी जैवभार ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है, पर इस ऊर्जा को पैदा करने के लिए खेतिहर अपशिष्ट, गन्ने के अपशिष्ट और खेतों की दूसरी गौण पैदावारों का प्रयोग भी करते हैं।

जैवभार के उपयोग के तीन ढंग हैं। उसे जलाकर गर्मी और बिजली पैदा की जाती है, मिथेन जैसे गैसीय ईंधन में बदला जा सकता है या द्रव ईंधन में बदला सकता है। द्रव ईंधन में, जिसे **जैव ईंधन** (biofuels) भी कहते हैं, दो अल्कोहल शामिल हैं**: एथेनाल** और **मेथेनाल**। चूंकि जैवभार को द्रव ईंधन में सीधे बदला जा सकता है, इसलिए यह किसी दिन हमें कारों, ट्रकों, बसों, हवाई जहाजों और रेलों के लिए काफी आवश्यक ईंधन की आपूर्ति कर सकता है और डीजल की जगह वनस्पति तेलों से बना **जैव-डीजल** ले सकता है। अमरीका में आज यह ईंधन सोयाबीन तेल से पैदा किया जा रहा है। शोधकर्ता ऐसे शैवाल (algae) विकसित कर रहे हैं जो तेल पैदा करेंगे और इसे जैव-डीजल में बदला जा सकेगा। घास, पेड़ों, छाल, बुरादे, कागज और खेती के अपशिष्ट से एथेनाल पैदा करने के नए ढंग खोजे गए हैं।

जैवगैस (biogas) : जैवगैस वनस्पतियों, पशुओं के मलमूत्र, अन्य व्यर्थ पदार्थ, घरेलू कूड़े-कचरे तथा मछली प्रसंस्करण (fish processing), दुग्धशाला और गंदा जल शोधन संयत्रों जैसे कुछ उद्योगों के व्यर्थ पदार्थों से पैदा की जाती है। यह एक गैसीय मिश्रण है जिसमें मिथेन, कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड और जलवाष्प मिली होती हैं। मिथेन ज्वलनशील गैस होने के कारण आसानी से जलता है। खाद्य पदार्थों के एक टन अपशिष्ट से 85 घनमीटर जैवगैस पैदा की जा सकती है। उपयोग के बाद बाकी पदार्थ खाद की तरह काम में आ जाता है।

भारत के देहातों में जैवगैस संयंत्र अधिकाधिक लोकप्रिय हो रहे हैं। जैवगैस संयंत्र गोबर को गैस में बदल देते हैं जिसका उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। दो ईंधन वाले इंजन (dual fuel engines) चलाने के लिए भी इसका उपयोग होता है। जैवगैस के इस्तेमाल से रसोईघरों में धुआं कम हुआ है। इससे हजारों परिवारों की फेफड़े संबंधी समस्याएं भी कम हुई हैं।

पवनशक्ति (Wind power) : पवन सबसे पहला ऊर्जा स्रोत था जिसका उपयोग नाव चलाने में किया जाता था। कोई 2000 साल पहले सिंचाई के लिए पानी उठाने और अनाज कूटने के लिए चीन, अफगानिस्तान और फारस में पवनचक्कियों का विकास हुआ। वायु से बिजली बनाने के आरंभिक प्रयास पिछली सदी के अंतिम वर्षों में अधिकतर डेनमार्क में किए गए। आज डेनमार्क और कैलिफार्निया में पवन टरबाइनों के बड़े-बड़े सहकारी संगठन हैं जो सरकारी ग्रिड को बिजली बेचते हैं। तमिलनाडु में बड़े-बड़े पवन संयंत्र हैं जो 850 मेगावाट बिजली पैदा करते हैं। **इस समय भारत संसार में पवन ऊर्जा का तीसरा बड़ा उत्पादक है।**

पवन ऊर्जा पवन की गति पर निर्भर होती है। इसलिए किसी क्षेत्र में पवन की औसत गति ऊर्जा के आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक होने का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारिक है। पवन की गति ऊंचाई के साथ बढ़ती है। टरबाइन के स्थल विशेष पर 10 मीटर की अपेक्षा 30 मीटर की ऊंचाई पर उपलब्ध ऊर्जा 60 प्रतिशत अधिक होती है।

पिछले दो दशकों में विद्युत उत्पादक पवनचक्कियों (टरबाइनों) की रूपरेखा, स्थल का चयन, स्थापना, कार्यकलाप और रखरखाव में तकनीकी रूप से भारी प्रगति हुई है। इन सुधारों के कारण पवन से ऊर्जा बनाने की दक्षता बढ़ी है और विद्युत उत्पादन की लागत कम हुई है।

ज्वारीय और लहरी शक्ति (Tidal and wave power) : पृथ्वी की 70 प्रतिशत सतह पर जल है। जल को गर्म करके सूर्य समुद्री धाराएं पैदा करता है और पवनें भी, जो लहरों को जन्म देती हैं। **अनुमान है कि उष्णकटिबंधीय सागरों (tropical oceans) द्वारा एक सप्ताह में अवशोषित सौर ऊर्जा दुनिया के कुल तेल भंडार 1000 अरब बैरल के बराबर हो सकती है।** सभी महाद्वीपों में स्थल से टकराने वाली समुद्री लहरों की ऊर्जा अनुमानत: 20-30 लाख मेगावाट के बराबर है। 1970 के दशक के बाद अनेक देश विद्युत उत्पादन के लिए सागरों की गतिज ऊर्जा के उपयोग संबंधी प्रयोग कर रहे हैं।

ज्वारीय ऊर्जा का उपयोग नदमुख (estuary) पर एक बंध बनाकर और ज्वारी प्रवाह को टरबाइनों से गुजारकर किया जाता है। एकतरफा प्राणाली में आने वाले ज्वार से एक जलद्वार के रास्ते एक ताल (basin) को भरवाया जाता है और इस तरह जमा पानी का उपयोग भाटे (low tide) के दौरान बिजली पैदा करने में किया जाता है। एक दोतरफा प्रणाली में अंदर आने वाले और बाहर जाने वाले ज्वार, दोनों से ही बिजली पैदा की जाती है।

एक और विकसित हो रही धारणा यह है कि समुद्रों की गर्म ऊपरी सतहों और ठंडे गहरे जल के बीच तापमान के अंतर का उपयोग ऊर्जा पैदा करने के लिए किया जाए। इन संयंत्रों को महासागर ताप ऊर्जा रूपांतरण (Ocean Thermal Energy Conversion—OCTECH) संयंत्र कहते हैं। यह एक उच्च तकनीक वाला संयंत्र है जो भविष्य में बहुत मूल्यवान साबित हो सकता है। इस समय महासागर विकास विभाग का एक संयंत्र तिरूचेंदूर (तमिलनाडु) में है जो प्रतिदिन एक मेगावाट बिजली पैदा करता है।

भूतापीय ऊर्जा (Geothermal energy) : यह पृथ्वी के अंदर संकलित ऊर्जा (stored energy) है। भूतापीय ऊर्जा का जन्म पृथ्वी की गहराई में गर्म, पिघली चट्टान से होता है जो पृथ्वी की पपड़ी के कुछ भागों को तोड़कर बाहार आ जाती है। मैग्मा से पैदा गर्मी **भूतापीय जलाशय** (underground reservoirs) कहलाने वाले भूमिगत जल को गर्म करती है। निकास का कहीं रास्ता मिले तो यह गर्म भूमिगत जल बाहर सतह पर आ जाता है या फिर उबलकर गीजर की शक्ल ले लेता है। आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से पृथ्वी की सतह से काफी नीचे कुआं खोदकर भूमिगत जलाशयों तक पहुंचा जाता है। इसे भूतापीय ऊर्जा का 'सीधा' प्रयोग कहते हैं और यह गर्म पानी की एक स्थायी धारा पैदा करता है जिसे पंप द्वारा ऊपर लाया जाता है।

20वीं सदी में कमरों को गर्म करने, औद्योगिक कामों और विद्युत उत्पादन में भूतापीय ऊर्जा का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता रहा है, खासकर आइसलैंड, जापान और न्यूजीलैंड में।

भूतापीय ऊर्जा लगभग पनबिजली जितनी ही सस्ती होती है और इसलिए भविष्य में इसका उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ेगा। लेकिन भूतापीय जलाशयों के जल में अकसर संक्षारक (corrosive) और प्रदूषक खनिज होते हैं। इसके अलावा, भूतापीय द्रव एक समस्या है और निबटारे से पहले उसका शोधन आवश्यक है।

परमाणु ऊर्जा (Nuclear power)

1938 में ओटो हान और फ्रिट्ज स्ट्रासमैन नामक दो जर्मन वैज्ञानिकों ने नाभिकीय विखंडन (nuclear fission) को दर्शाया। उन्होंने देखा कि न्यूट्रानों से किसी यूरेनियम परमाणु पर घात करवा कर वे उसके नाभिक को तोड़ सकते हैं। नाभिक टूटा तो कुछ द्रव्यमान (mass) ऊर्जा में परिवर्तित हो गया। लेकिन परमाणु ऊर्जा उद्योग का विकास 1950 के दशक के अंतिम भाग में हुआ। दुनिया में बड़े पैमाने पर पहला परमाणु ऊर्जा संयंत्र 1957 में पेंसिलवेनिया (संयुक्त राज्य अमरीका) में काम करना शुरू किया।

डॉ. होमी भाभा को भारत में परमाणु ऊर्जा विकास का जनक माना जाता है। मुंबई का भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र आधुनिक नाभिकीय प्रौद्योगिकी का अध्ययन और विकास करता है। भारत में पांच परमाणु ऊर्जा केंद्रों पर दस परमाणु रिएक्टर हैं जो देश की दो प्रतिशत बिजली पैदा करते हैं। ये संयंत्र महाराष्ट्र (तारापुर), राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश और गुजरात में स्थित हैं। भारत को यूरेनियम झारखंड की खदानों से मिलता है। केरल और तमिलनाडु में थोरियम के भंडार भी हैं।

परमाणु रिएक्टर विद्युत उत्पादन के लिए यूरेनियम-235 का उपयोग करते हैं। एक किलोग्राम यूरेनियम-235 से मुक्त ऊर्जा 3,000 टन कोयला जलाने से प्राप्त ऊर्जा के बराबर होती है। यूरेनियम-235 की छड़ें बनाकर परमाणु रिएक्टर में लगा दी जाती हैं। नियंत्रक छड़ें न्यूट्रानों को अवशोषित करके विखंडन (fission) को समायोजित करती हैं जिससे रिएक्टर में शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया से ऊर्जा मुक्त होती है। प्रतिक्रिया में मुक्त ऊष्मा से जल को गर्म करके भाप बनाई जाती है जो बिजली पैदा करने वाली टरबाइनों को चलाती है।

2. पारितंत्र (Ecosystems)

पारितंत्र की अवधारणा (Concept of an ecosystem)

'पारितंत्र' (ecosystem) एक विशेष और पहचान योग्य भूदृश्य वाला क्षेत्र होता है, जैसे वन, चरागाह, रेगिस्तान, दलदल या तटीय क्षेत्र। पारितंत्र की प्रकृति उसके पहाड़ियों, पहाड़, मैदानों, नदियों, झीलों, तटीय क्षेत्रों या द्वीपों जैसी भौगोलिक विशेषताओं पर आधारित होती है। जलवायु की दशाएं भी उसे नियंत्रित करती हैं, जैसे उस क्षेत्र में धूप की मात्रा, तापमान और वर्षा की मात्रा। भौगोलिक, जलीय, जलवायवीय (climatic) और मिट्टी संबंधी विशेषताएं उसके अजैविक घटक (abiotic components) होते हैं। ये विशेषताएं ऐसी दशाएं पैदा करती हैं जो उन पेड़-पौधों और प्राणियों के समुदाय को सहारा देती हैं जिनको उन विशेष दशाओं में विकास की प्रक्रिया ने पैदा किया है। पारितंत्र के जीवित भाग को उसका जैविक घटक (biotic components) कहते हैं।

पारितंत्रों को स्थलीय और जलीय पारितंत्रों में विभाजित किया जाता है। ये पृथ्वी पर जीवित प्राणियों के निवास की प्रमुख दशाएं हैं।

किसी क्षेत्र के सभी प्राणी पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों के समुदायों में रहते हैं। वे अलग-अलग समय पर अलग-अलग कारणों से अपने अजैविक पर्यावरण से और आपस में भी अंत: क्रिया करते रहते हैं। पृथ्वी पर जल, थल और वायु के एक छोटे-से भाग में ही जीवन संभव है। विश्व के स्तर पर पृथ्वी का पतला-सा ऊपरी भाग, जिसमें जल, थल और वायु आते हैं, जीवमंडल (bisphere) कहलाता है।

राष्ट्र या राज्य के स्तर पर जैव-भौगोलिक क्षेत्र (biogeographical regions) होते हैं। **भारत में अनेक सुस्पष्ट भौगोलिक क्षेत्र हैं-हिमालय, गंगा का मैदान, मध्य भारत का पठार, पश्चिमी और पूर्वी घाट, पश्चिम का अर्धशुष्क रेगिस्तान, दकन का पठार, तटीय पट्टियां तथा अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह। भौगोलिक रूप से सुस्पष्ट इन क्षेत्रों में प्रत्येक में ऐसे पौधे और प्राणी हैं जो क्षेत्र-विशेष की परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल चुके हैं।**

और भी स्थानीय स्तर पर लें तो हर क्षेत्र में ढांचागत और प्रकार्यात्मक दृष्टि (structurally and functionally) से पहचान योग्य पारितंत्र हैं, जैसे विभिन्न प्रकार के वन, चरागाहें, नदियों के जलग्रहण क्षेत्र (river catchments), डेल्टाओं की मैनग्रोव दलदलें, सागर तट, द्वीप आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। इनमें हर एक विशेष पौधों और प्राणियों का आवास (habitat) है।

परिभाषा : ***किसी क्षेत्र में प्राणियों और पौधों के जीवंत समुदाय और साथ में पर्यावरण के अजैविक घटक-जैसे मिट्टी, हवा, पानी-को पारितंत्र कहते हैं।***

कुछ पारितंत्र खासे जानदार होते हैं और एक सीमा तक मानव के कार्यकलापों से कम ही प्रभावित होते हैं। कुछ अन्य पारितंत्र नाजुक होते हैं और मानव के कार्यकलापों से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। पर्वतीय पारितंत्र बेहद नाजुक होते हैं। इसका कारण है कि वनों के आवरण का ह्रास होने पर मिट्टी का भारी कटाव होता है और नदियों के मार्ग बदल जाते हैं। द्वीपीय पारितंत्र भी मानवीय कार्यकलाप से आसानी से प्रभावित हो जाते हैं और इसके कारण वहां के पौधों और पशु-पक्षियों की अनेक अनोखी प्रजातियों का तेजी से विनाश हो सकता है। सदाबहार वन और प्रवाल भित्तियां (coral reefs) भी अनेक प्रजातियों वाले नाजुक पारितंत्रों के उदाहरण हैं जिनको उसका ह्रास कर सकने वाले अनेक प्रकार के मानवीय कार्यकलापों से बचाया जाना चाहिए। प्रदूषण द्वारा और आसपास भूमि के उपयोग में परिर्वतनों से नदियों और दलदलों के पारितंत्र भी गंभीरता से प्रभावित हो सकते हैं।

पारितंत्रों का बोध (Understanding ecosystems)

प्राकृतिक पारितंत्रों में जंगल, चरागाहें, रेगिस्तान तथा तालाब, नदी, झील और समुद्र जैसे जलीय पारितंत्र शामिल हैं। मनुष्य द्वारा परिवर्तित पारितंत्रों (man-modified ecosystems) में खेती की जमीनें तथा भूमि के औद्योगिक और नगरीय उपयोग के ढर्रे शामिल हैं।

हर पारितंत्र में कुछ साझी विशेषताएं होती हैं जिनको उस क्षेत्र में देखा जा सकता है:

☞ वह पारितंत्र दिखाई कैसा देता है?

हम अपने परिवेश के विशेष पारितंत्रों की खास विशेषताओं का वर्णन कर सकते हैं। नगरीय और प्राकृतिक परिवेश, दोनों में क्षेत्रीय

अवलोकन (field observations) किए जाने चाहिए।

☞ उसका ढांचा क्या है?

क्या वह जंगल है, चरागाह, जलाशय, खेतिहर क्षेत्र, चरागाही क्षेत्र, नगरीय क्षेत्र, अथवा औद्योगिक क्षेत्र आदि है?

☞ उसके पौधों और पशुओं की प्रजातियों की संरचना क्या है?

☞ पारितंत्र कैसे काम करता है?

पारितंत्र अनेक जैव-भूरासायनिक चक्रों (biogeochemical cycles) और ऊर्जा के स्थानांतरण की व्यवस्थाओं (energy-transfer mechanism) के द्वारा काम करता है। पारितंत्र के घटकों को देखिए और इनमें वायु, जल, जलवायु और मिट्टी जैसे अजैविक घटक और विभिन्न पौधों और प्राणियों जैसे जैविक घटकों को दर्ज कीजिए। पारितंत्र के ये दोनों पक्ष अनेक कार्यप्रणालियों के द्वारा आपस में अंत: क्रिया करके प्रकृति के पारितंत्र बनाते हैं। **पौधों, शाकाहारियों और मांसाहारियों से खाद्य शृंखलाएं (food chains) बनती देखी जा सकती हैं। ये सभी शृंखलाएं जुड़कर वह 'जीवन-जाल' (web of life) बनाती हैं जिस पर मानव निर्भर है। इनमें से हर खाद्य- शृंखला ऊर्जा का उपयोग करती है जो सूर्य से मिलती है और पारितंत्र को संचालित करती है।**

पारितंत्र का ह्रास (Ecosystem degradation)

पारितंत्र स्वयं जीवन के आधार हैं। निर्जन क्षेत्र के प्राकृतिक पारितंत्रों से अनेक उत्पाद प्राप्त होते हैं ओर इनमें ऐसी प्रक्रियाएं अनवरत चलती रहती हैं जिन पर मानव सभ्यता का अस्तित्व टिका हुआ है।

लेकिन मानव के कार्यकलाप प्राय: पारितंत्रों में विघ्न डालते हैं जिससे पौधों व प्राणियों की उन प्रजातियों का विनाश होता है जो विशेष प्राकृतिक पारितंत्रों में ही रह सकते हैं। कुछ प्रजातियों का विनाश पारितंत्रों पर गंभीर प्रभाव डालता है। इनको 'आधारी' (keystone) प्रजातियां कहते हैं। इनका विनाश भूमि के उपयोग में परिवर्तन से होता है। इमारती लकड़ी के लिए जंगल काटे जाते हैं, खेती की जमीन बढ़ाने के लिए दलदलों को सुखाया जाता है तथा घास के उन अर्धशुष्क मैदानों को सिंचित खेतों में बदल दिया जाता है जिनका इस्तेमाल चरागाहों के रूप में होता आया था। औद्योगिक प्रदूषण तथा नगरीय बस्तियों से निकलने वाले कचरे अनेक प्रजातियों में विषाक्ता पैदा कर उन्हें नष्ट कर सकते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों में कमी के दो कारण हैं-हमारी तेजी से बढ़ती जनसंख्या जिसे जीने के लिए और संसाधन चाहिए, और समृद्ध समाजों की वृद्धि जो बड़ी मात्रा में संसाधनों और ऊर्जा का उपयोग और अपव्यय करते हैं। प्राकृतिक पारितंत्रों की कीमत पर संसाधनों का अधिकाधिक दोहन किया जा रहा है जिसके कारण उनके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य बाधित हो रहे हैं। हम सभी अपने दैनिक जीवन में अनेक प्रकार के संसाधनों का उपयोग करते हैं। यदि हम उनके स्रोत्रों को देखें तो पाएंगे कि ये संसाधन प्रकृति अब उनको सहारा नहीं दे सकती। अगर हम जल जैसे संसाधनों के उपयोग से पहले सोचें, कागज का पुनरोपयोग और पुनर्चालन करें और ऐसे प्लास्टिक का कम उपयोग करें जो क्षरणीय नहीं (non degradable) हैं तो इन उपायों से हमारे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण संभव होगा।

पारितंत्र में ऊर्जा का प्रवाह (Energy flow in the ecosystem)

हर पारितंत्र में अनेक परस्पर संबद्ध व्यवस्थाएं होती हैं जो मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। ये हैं जल-चक्र, कार्बन-चक्र, आक्सीजन-चक्र, नाइट्रोजन-चक्र और ऊर्जा-चक्र। जहां हर पारितंत्र इन चक्रों से नियंत्रित होता है, वहीं पारितंत्रों की जैविक-अजैविक विशेषताएं एक दूसरे से भिन्न होती हैं।

पारितंत्र के सभी प्रकार्य उसके पौधों और प्राणियों की प्रजातियों की वृद्धि और पुनर्जन्म से किसी न किसी प्रकार संबंधित होते हैं। इन परस्पर संबद्ध प्रक्रियाओं को अनेक चक्रों के रूप में दिखाया जा सकता है; ये सभी प्रक्रियाएं सूर्य की ऊर्जा पर निर्भर होती हैं। प्रकाश-संश्लेषण में पौधे कार्बन डाइआक्साइड लेते और वायु में आक्सीजन छोड़ते हैं। प्राणी सांस लेने के लिए इस आक्सीजन पर निर्भर होते हैं। जल-चक्र वर्षा पर निर्भर है जो पौधों और प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य है। ऊर्जा का चक्र पोषक तत्त्वों को वापस मिट्टी में भेजता है जिस पर पौधों का जीवन फलता-फूलता है। इन जीवन-चक्रों के समुचित कार्यकलाप से हमारे अपने जीवन का गहरा संबंध होता है। अगर मानव के कार्यकलाप से इन जीवन-चक्रों में उलटफेर होता रहा तो पृथ्वी पर मानवजाति नहीं रहेगी।

जल-चक्र (The water cycle)

वर्षा होती है तो पानी पृथ्वी पर बहता है, नदियों में बहता है या सीधे समुद्र में गिरता है। भूमि पर वर्षा का जो जल गिरता है उसका एक भाग रिसकर नीचे चला जाता है। यह बाकी साल भूमि के नीचे जमा रहता है। पौधे भूमि से यह जल और साथ में मिट्टी से पोषकतत्त्व खींचते हैं। फिर यह जल वाष्प के रूप में पत्तों से बाहर आता है और वायुमंडल में वापस चला जाता है। जलवाष्प वायु से हल्का होने के कारण ऊपर उठकर बादल बन जाता है। हवा इन बादलों को उड़ाकर दूर-दूर ले जाती है और जब ये बादल और ऊपर उठते हैं तो वाष्प संघनित होकर बूंदें बन जाते हैं जो वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरते हैं। हालांकि यह अंतहीन चक्र है जिस पर जीवन निर्भर है, पर मानव के कार्यकलाप प्रदूषण उत्पन्न करके वायुमंडल में घोर परिवर्तन ला रहे हैं जिससे वर्षा के प्रतिमान बदल रहे हैं। इसके कारण अफ्रीका के कुछ देशों में वर्षों तक चलने वाले सूखे पड़ रहे हैं जबकि संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देशों में विनाशकारी बाढ़ें आ रही हैं। इन प्रभावों से पैदा *अल नीनो* (El Nino) तूफानों ने पिछले कुछ वर्षों में अनेक स्थानों पर तबाही मचाई है।

कार्बन-चक्र (The carbon cycle)

कार्बनिक यौगिकों में मौजूद कार्बन, पारितंत्र के अजैविक और जैविक, दोनों घटकों में पाया जाता है। कार्बन पौधों और प्राणियों, दोनों के ऊतकों का निर्माण तत्त्व है। वायुमंडल में कार्बन-कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) के रूप में होता है।

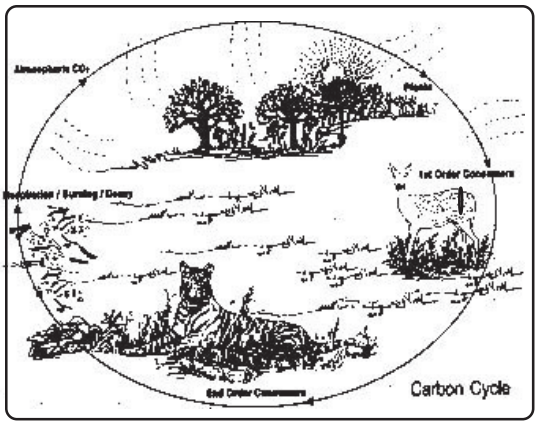

सूरज की रोशनी में पौधे अपने पत्तों के द्वारा वायुमंडल से कार्बन डाइआक्साइड ग्रहण करते हैं। पौधे इस कार्बन डाइआक्साइड को अपनी जड़ों द्वारा मिट्टी से सोखे हुए जल से मिलाते हैं और धूप की मौजूदगी में कार्बोहाइड्रेड बनाते हैं जिनमें कार्बन होता है। इस प्रक्रिया को प्रकाश-संश्लेषण (photosynthesis) कहते हैं। पौधे अपनी वृद्धि और विकास के लिए इस पेचीदा प्रक्रिया का विकास करते हैं। इस प्रक्रिया में पौधे वायुमंडल में आक्सीजन छोड़ते हैं जिस पर प्राणी सांस लेने के लिए निर्भर होते हैं। इस तरह पौधे पृथ्वी के वायुमंडल में आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड के प्रतिशत को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। पूरी मानवजाति इस प्रक्रिया से प्राप्त आक्सीजन पर निर्भर है। यह वातावरण में CO_2 की मात्रा पर भी अंकुश रखती है।

शाकभक्षी अपने भोजन के लिए पौधों पर निर्भर हैं जिनसे वे ऊर्जा पाते और बढ़ते हैं। प्राणी सांस लेकर कार्बन डाइआक्साइड मुक्त करते हैं। वे जो मल त्याग करते हैं उससे भी मिट्टी को कार्बन वापस मिलता है। पौधे और पशु जब मरते हैं तो उनका कार्बन मिट्टी में वापस आ जाता है। इन्हीं प्रक्रियाओं से कार्बन-चक्र पूरा होता है।

आक्सीजन-चक्र (The oxygen cycle)

मानव और पशु श्वसन के दौरान वायु से आक्सीजन ग्रहण करते हैं। पौधे प्रकाश-संश्लेषण के दौरान वायुमंडल को आक्सीजन लौटा देते हैं। इसके कारण आक्सीजन-चक्र कार्बन चक्र से जुड़ जाता है। वनविनाश के कारण हमारे वायुमंडल में आक्सीजन का स्तर धीरे-ध ीरे कम हो सकता है। इस तरह वनस्पति जीवन हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जिसे हम प्रायः नहीं समझते। वनरोपण कार्यक्रमों में हमारा भाग लेना इसीलिए महत्त्वपूर्ण है।

नाइट्रोजन-चक्र (The nitrogen cycle)

मांसभक्षी शाकभक्षियों को खाते हैं जो पौधों को खाकर जीवित रहते हैं। जानवर जब जल-मल त्याग करते हैं तो कीड़े-मकोड़े, मुख्यत: गुबरैले (beetles) और चींटे (ants), इस सामग्री को विघटित करते हैं। मिट्टी के ये छोटे प्राणी व्यर्थ पदार्थों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ते हैं जिन पर नन्हें जीवाणु (bacteria) और कवक (fungi) अपना काम करते हैं। इस तरह ये पदार्थ और विघटित होते हैं और पोषकतत्त्व मुक्त होते हैं जिनको पौधे अपनी वृद्धि के लिए ग्रहण करते हैं। इसी तरह मुर्दा प्राणियों के शरीरों का विघटन भी पोषक तत्त्वों को मुक्त करता है जिनको लेकर पौधे बढ़ते हैं। इस प्रकार वह नाइट्रोजन-चक्र पूरा होता है जिस पर जीवन का दारोमदार है।

पोषण स्तर (Trophic levels)

पारितंत्र एक मूलभूत इकाई है जिसमें प्राकृतिक सम्मिश्र समुदाय रहते हैं जो एक, दो, तीन अथवा चार चरणों में पौधों से आहार प्राप्त करते हैं और उसी के अनुसार इन चरणों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थक पोषण स्तर (trophic levels, *trophe* : पोषण) अथवा आहार स्तर कहते हैं। आइए देखें कि वे कौन-कौन से पोषण स्तर हैं जिनमें स्वपोषी तथा भिन्न प्रकार के विषमपोषी आते हैं :

- हरे पौधे (उत्पादक); पोषण स्तर I – स्वपोषी
- शाकभक्षी (प्राथमिक उपभोक्ता); पोषण स्तर II – विषमपोषी
- मांसभक्षी (द्वितीयक उपभोक्ता); पोषण स्तर III – विषमपोषी
- मांसभक्षी (तृतीयक उपभोक्ता); पोषण स्तर IV – विषमपोषी
- शीर्ष मांसभक्षी (चतुर्थक उपभोक्ता); पोषण स्तर V – विषमपोषी

इस प्रकार ऊर्जा भी विभिन्न पोषण स्तरों में से प्रवाहित होती है : उत्पादकों से होती हुई बाद के पोषण स्तरों में (चित्र 1.9)। यह ऊर्जा सदैव निम्नतर (उत्पादक) स्तर से उच्चतर (शाकभक्षी, मांसभक्षी आदि) पोषण स्तरों में को जाती है। यह उल्टी दिशा में यानी मांसभक्षियों से शाकभक्षियों और फिर उत्पादकों में को कभी प्रवाहित नहीं होती। एक और बात भी है कि प्रत्येक पोषण स्तर पर कुछ ऊर्जा की हानि होती है जो अनउपयोगशील ऊष्मा के रूप में होती है, इसीलिए प्रथम पोषण स्तर से ही ऊर्जा का स्तर घटता जाता है। जिसका परिणाम यह होता कि केवल चार या पांच पोषण स्तर ही होते हैं और छ: से ज्यादा शायद ही कभी हों क्योंकि उसके बाद जीव को सहारा देने के लिए ऊर्जा बहुत ही कम बचती है। पोषण स्तरों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि पारितंत्र में ऊर्जा परिवर्तन किस प्रकार होता है। साथ ही इससे हमें एक उपयोगी संकल्पनात्मक आधार भी मिलता है कि एक ही प्रकार की सामान्य अशन विधि वाले जीवों को एक ही समूह में रखा जा सकता है और उन सबको एक ही पोषण स्तर का दर्जा दिया जाता है। इससे पता चलता है कि एक ही पोषण स्तर पर आने वाले जीव अपने भोजन को उत्पादक से समान संख्या के चरणों या पोषण स्तर तक आने के बाद ही प्राप्त करते हैं। पोषण स्तरों को उन चरणों की संख्या के अनुसार संख्या दी जाती है जो आहार अथवा ऊर्जा-स्रोत यानी उत्पादक से जितनी दूर होते हैं।

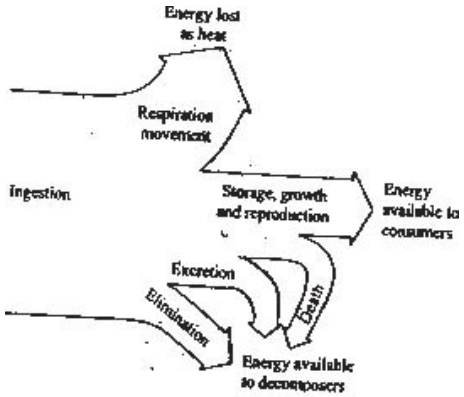

चित्र: उपभोक्ताओं द्वारा ऊर्जा का उपयोग– आहार में अंतर्ग्रहीत ऊर्जा या तो पचा ली जाती एवं स्वांगीकृत हो जाती है अथवा यूं ही विष्ठा में बाहर निकल जाती है। स्वांगीकृत ऊर्जा का शरीर में अनेक क्रिया में इस्तेमाल हो जाता है जैसे श्वसन गति, अथवा जनन में या संचित हो जाती और नए ऊतकों की वृद्धि में काम आ जाती या उत्सर्जित हो जाती है। जीव के मरने पर ऊतकों में भंडारित ऊर्जा विघटकों के काम आ जाती है। अगले पोषण स्तर के जीवों को केवल भंडारित ऊर्जा ही उपलब्ध होती है।

खाद्य शृंखलाएं (Food chains)

एक-दुसरे को खाने वाले जीवों का अनुक्रम एक खाद्य शृंखला बनाता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। चित्र में दिया गया तीर का निशान उत्पादक से उपभोक्ता की ओर पोषकों तथा ऊर्जा की दिशा और गति दर्शाता है। पोषण स्तरों की ही तरह और उन्हीं कारणों के आधार पर खाद्य शृंखला की कड़ियां तथा चरण भी प्राय: चार या पांच ही होते हैं।

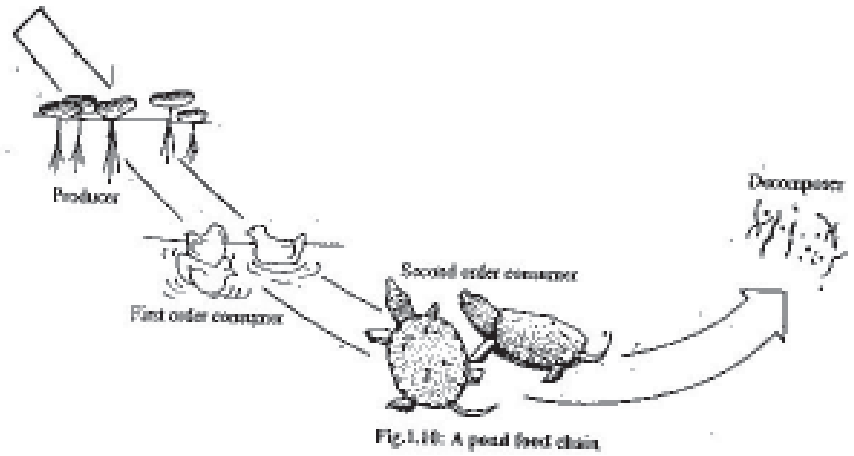

Fig. 1.10: A pond food chain

चित्र : तालाब की एक खाद्य शृंखला

कुछ प्राणी केवल एक ही प्रकार का आहार करते हैं और इसलिए वे एक ही खाद्य शृंखला के सदस्य होते हैं। अन्य प्राणी अलग-अलग प्रकार के भोजन करते हैं इसलिए वे न केवल विभिन्न खाद्य-शृंखला के ही सदस्य होते हैं वरन् अलग-अलग खाद्य- शृंखलाओं उनके स्थान यानी पोषण स्तर भी अलग-अलग हो सकते हैं और इस प्रकार उनकी स्पीशीज की उत्तरजीविता सुनिश्चित होती है। कोई प्राणी एक खाद्य-शृंखला में हो सकता है कि प्राथमिक उपभोक्ता हो जिसमें वह पौधे खाता हो तथा अन्य शृंखलाओं में वह द्वितीयक अथवा तृतीयक उपभोक्ता भी हो सकता है जिनमें वह शाकभक्षियों को खाता हो अथवा मांसभक्षियों को।

चूंकि मानव न तो प्रकाश ऊर्जा की मात्रा बढ़ा सकता है और ऊर्जा-स्थानांतरण के दक्षता में भी बहुत मामूली-सा ही कुछ कर सकता है इसलिए ऊर्जा प्राप्ति के लिए वह केवल खाद्य शृंखलाओं को छोटा ही कर सकता है, अर्थात् प्राणियों को न खाकर प्राथमिक उत्पादकों यानी पौधों को खाता है।

बहुत अधिक जनसंख्या वाले देशों में लोग शाकाहारी बनने की ओर प्रवृत्त होते हैं क्योंकि तब खाद्य शृंखला सबसे छोटी होती है और इस विधि से भूमि का एक निर्दिष्ट क्षेत्र भी काफी संख्या में लोगों का भरण पोषण कर सकता है। मान लीजिए एक किसान ने गेहूं और सब्जियों की फसल प्राप्त की है। वह इसे या तो सीधे ही खा सकता है या अपनी बकरियों को खिलाकर उन बकरियों को खा सकता है। एक निर्दिष्ट भूमि क्षेत्र पर शाकाहारी भोजन पर ज्यादा बड़ी संख्या में लोगों का पेट भरा जा सकता है जबकि उतनी ही भूमि पर मांसाहारी भोजन पर कम संख्या में लोग जीवित रह सकेंगे। तो इस प्रकार सूर्य की ऊर्जा को सर्वाधिक कारगर रूप में तभी उपयोग किया जा सकता है जब लोग शाकाहारी हों।

खाद्य शृंखलाओं के प्ररूप (Types of food chains)

प्रकृति में दो मुख्य प्रकार की खाद्य शृंखलाएं पायी जाती हैं-

(i) **चारण खाद्य शृंखला (Grazing food chain) :** वे उपभोक्ता जो भोजन के रूप में पौधों अथवा पौधों के भागों का उपयोग करके खाद्य शृंखला आरम्भ करते हैं, चारण खाद्य शृंखला बनाते हैं। यह खाद्य शृंखला हरे पौधों से आरम्भ होती है तथा प्राथमिक उपभोक्ता शाकभक्षी होता है उदाहरण के लिए

घास → टिड्डा → पक्षीगण → बाज अथवा शिकारी

(ii) अपरद खाद्य शृंखला (Detritus food chain) : यह खाद्य शृंखला क्षय होते प्राणियों एवं पादप शरीर के मृत जैविक पदार्थ से आरम्भ होकर सूक्ष्मजीवों में जाती और फिर वहां से अपरद खाने वाले जीवों में आती है जिन्हें अपरदभक्षी अथवा विघटक कहते हैं और फिर वहां से अन्य परभक्षियों में पहुंचती है।

कचरा → स्प्रिंगटेल (कीट) → छोटी मकड़ियां (मांसभक्षी)

इन दो खाद्य शृंखलाओं के बीच का अंतर प्रथम स्तर उपभोक्ताओं के लिए ऊर्जा के स्रोत का है। चारण खाद्य शृंखला में ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत सजीव पादप जैवसंहति है जबकि अपरद आहार शृंखला में ऊर्जा का स्रोत मृत जैविक पदार्थ अर्थात् अपरद है। ये दोनों खाद्य शृंखलाएं संबंधित हैं। अपरद खाद्य शृंखला में आरम्भिक ऊर्जा स्रोत वह वर्ज्य पदार्थ एवं मृत जैविक पदार्थ है जो चारण खाद्य शृंखला से आया हुआ है।

खाद्य जाल (Food web)

खाद्य शृंखला में पारितंत्र में होने वाले खाद्य अथवा ऊर्जा प्रवाह का केवल एक ही पहलू प्रस्तुत करता है और उससे यह अर्थ निकलता है कि जीवों में एक सीधा, सरल, शेष से पृथक संबंध होता है जो पारितंत्रों में शायद ही कभी होता हो। **पारितंत्र के भीतर अनेक परस्पर संबंधित खाद्य शृंखलाएं हो सकती हैं। अधिकतर, वही एक खाद्य संसाधन एक से अधिक शृंखलाओं को अंश हो सकता है विशेषकर तब, जबकि वह संसाधन किसी एक निम्नतर पोषण स्तर पर हो।** उदाहरण के लिए एक ही पौधा एक ही समय अनेक शाकभक्षियों का आहार हो सकता है, जैसे घास पर खरगोश अथवा टिड्डा या बकरी या गाय सभी निर्भर हो सकते हैं। इसी प्रकार एक शाकभक्षी अनेक विभिन्न मांसभक्षी स्पीशीज का भोजन हो सकता है। साथ ही यह भी हो सकता है कि अलग-अलग ऋतुओं में आहार की उपलब्धता और शाकभक्षियों की तथा मांसभक्षियों की भी पसंद भी बदलती रहती है, जैसे गर्मियों में हम तरबूज खाते हैं तथा जाड़ों में नाशपतियां। इस प्रकार अशन संबंधों का एक परस्पर संबंधित जाल बन जाता है जो खाद्य-जालों (Food webs) का रूप ले लेते हैं खाद्य जाल में ऊर्जा तथा पोषकों के वे सभी संभावित स्थानांतरण दर्शाए जाते हैं जो किसी पारितंत्र में रहने वाले सभी जीवों में हो सकते हैं, परन्तु खाद्य शृंखला में आहार का केवल एक ही दिशामार्ग दिखाया गया होता है।

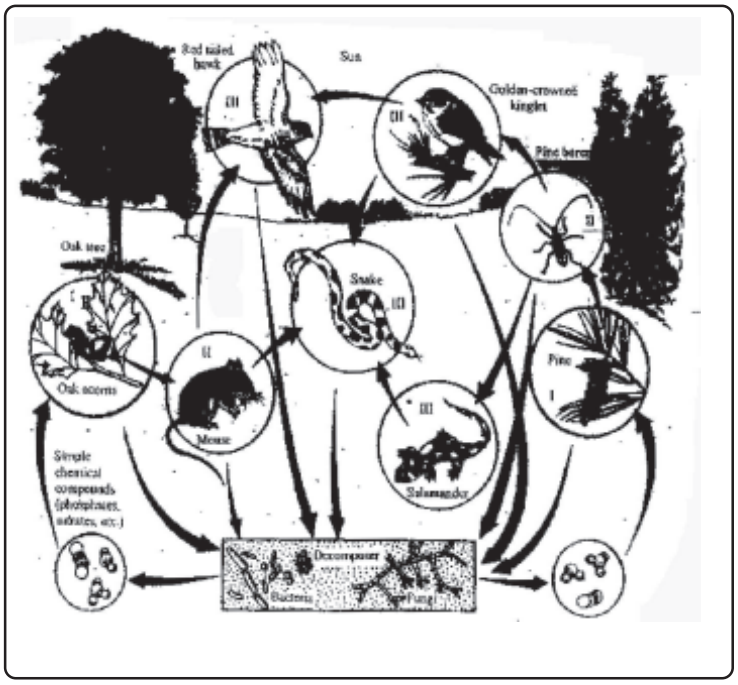

चित्र : एक प्रारूपी थल खाद्य जाल में दर्शाए गए प्राथमिक उत्पादकों, उपभोक्ताओं तथा विघटकों का सम्मिश्र जाल, जिसमें विभिन्न पोषण स्तरों को रोमन संख्याओं से दर्शाया गया है।

जैवसंचयन तथा जैवआवर्धन (Bioaccumulation and biomagnification)

इस उपभाग में हम देखेंगे कि प्रदूषक और उनमें भी विशेषत: अनिम्नीकरणी (non-degra-dable) प्रदूषक पारितंत्र के भीतर किस प्रकार विभिन्न पोषण स्तरों में से गुजरते हैं (चित्र 1.13)। अनिम्नीकरणी प्रदूषकों से हमारा अभिप्राय ऐसे पदार्थों से है जो जीवधारियों के भीतर उपापचयित नहीं हो पाते। उदाहरण के लिए क्लोरिनेटेड हाइड्रोकार्बन्स। इन प्रदूषकों की गति में दो प्रक्रियाएं शामिल हैं- (i) जैव संचयन तथा (ii) जैव आवर्धन।

(i) जैवसंचयन (Bioaccumulation) : यह दर्शाता है कि किस प्रकार प्रदूषक खाद्य शृंखला के भीतर पहुंचते हैं। जैवसंचयन में पर्यावरण में से किसी प्रदूषक का खाद्य शृंखला के प्रथम जीव में सांद्रण बढ़ता जाता है।

(ii) जैव-आवर्धन (Biomagnification) : जैव आवर्धन का अर्थ उस प्रवृत्ति से है जिसमें जैसे-जैसे प्रदूषक एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर पर जाते हैं वैसे-वैसे उनका सांद्रण भी बढ़ता जाता है। अत: जैव-आवर्धन में आहार शृंखला की एक कड़ी से अगली कड़ी में प्रदूषक का सांद्रण बढ़ती जाता है।

इन परिघटनाओं से हमारा अर्थ है क्योंकि इनके परस्पर योग से पर्यावरण के बहुत कम सांद्रणों वाले रसायन भी जीवों में इतनी मात्रा में पहुंच जाते हैं जिनसे समस्याएं पैदा होती हैं। जैव-आवर्धन हो सकने के लिए प्रदूषक में ये चार बातें होनी जरूरी हैं :

1. दीर्घस्थायित्व
2. गतिशीलता
3. विभिन्न प्रकार की वसा में विलयशीलता
4. जैविकीय सक्रियता

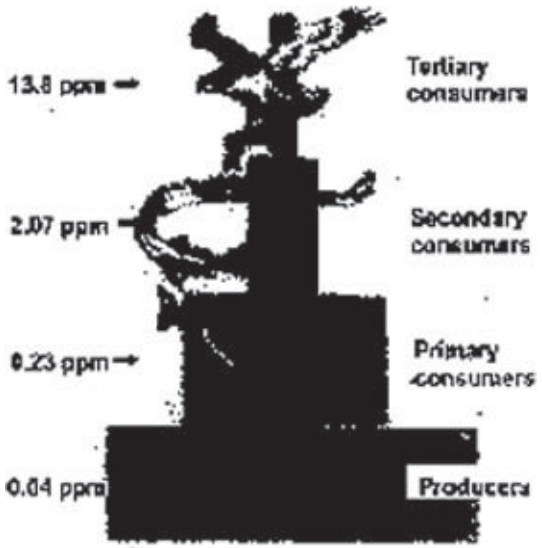

चित्र : इस चित्र में दर्शाया गया है कि DDT किस प्रकार किसी खाद्य-शृंखला के चार क्रमिक पोषण स्तरों पर जीवों के ऊतकों में सांद्रित होता जाता है। DDT का सांद्रण इसलिए होता है क्योंकि एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में गुजरते समय इसका उपापचयन तथा उत्सर्जन अत्यधिक धीमा होता है। अत: DDT शरीर में (विशेषकर वसा में) संचित होता जाता है। चित्र में दी गयी संख्याएं ऊतकों में DDT तथा इसके व्युत्पादों के सांद्रण मान (भाग प्रति 10 लाख/parts per million अथवा ppm) दर्शाती हैं।

यदि कोई प्रदूषक अल्पस्थायित्व वाला रहा तब वह खतरनाक बनने से पूर्व ही खण्डित हो जाता है। यदि वह गतिशील नहीं है तब वह एक ही स्थान पर बना रहेगा और अन्य जीवों द्वारा उसके प्राप्त किए जाने की संभावना नहीं है। यदि प्रदूषक जल में विलयशील रहा तब वह जीव द्वारा उत्सर्जित हो जाएगा। परन्तु वे प्रदूषक जो वसा में घुलनशील होते हैं लंबे समय तक बने रह सकते हैं। परम्परा रही है कि प्रदूषकों की मात्रा का मापन जीवों के वसा ऊतकों में किया जाता है जैसे कि मछलियों में। स्तनियों में अक्सर मादाओं के दूध का परीक्षण किया जाता है क्योंकि दूध में वसा बहुत मात्रा में होती है और बहुत छोटे बच्चों पर टॉक्सिनों (विषों) का ज्यादा जल्दी असर होता है। यदि कोई प्रदूषक जैविक रूप में सक्रिय नहीं रहा तो उसमें जैवआवर्धन हो सकता है लेकिन वास्तव में वह हमारे लिए चिंता का विषय नहीं रहता क्योंकि कदाचित् उससे कोई समस्या खड़ी नहीं होगी।

पिरैमिड (Pyramids)

आप ने पोषण स्तरों के विषय में पढ़ा। पोषण स्तरों के इन चरणों को एक आरेखीय ढंग से दर्शाया जा सकता है, और उन्हें पारिस्थितिकीय पिरैमिड कहते हैं। खाद्य उत्पादक पिरैमिड का आधार होता है तथा शीर्ष मांसभक्षी उसकी शिखर पर। अन्य उपभोक्ता पोषण स्तर इनके बीच होते हैं। पारिस्थितिक पिरैमिडों की तीन श्रेणियां होती हैं :

- संख्याओं का पिरैमिड
- जैवसंहति का पिरैमिड, तथा
- ऊर्जा अथवा उत्पादकता का पिरैमिड

संख्याओं का पिरैमिड (Pyramid of numbers)

इसमें प्राथमिक उत्पादकों और विभिन्न स्तरों के उपभोक्ताओं की संख्याओं के बीच का संबंध दर्शाया जाता है (चित्र 1.1)। यह उन विभिन्न स्पीशीज जो पारितंत्र के प्रत्येक पोषण स्तर पर होती हैं, के जनों (व्यष्टियों) की कुल संख्या का लेखाचित्र प्रदर्शन होता है। उदाहरण के लिए, चित्र 1 (a) में एक तालाब का पिरैमिड दर्शाया गया है जिसमें पिरैमिड का आधार उच्चतर पोषण स्तरों के लिए खाद्य उत्पादन दर्शाता है। पिरैमिड में कई क्षैतिज शलाकाएं हैं जो विशिष्ट पोषण स्तर दर्शाती हैं और जिन्हें नीचे प्राथमिक उत्पादकों के स्तर से लेकर ऊपर शाकभक्षी और मांसभक्षी तक ले जाया गया है। प्रत्येक शलाका खंड की लम्बाई पारितंत्र के प्रत्येक पोषण स्तर पर व्यष्टि की कुल संख्या दर्शाती है। प्रत्येक चरण पर ऊपर को जाते हुए व्यष्टियों की संख्या में भारी गिरावट आती है, तथा आरेखीय निरूपण एक पिरैमिड का रूप ले लेता है, जिसे संख्याओं का पिरैमिड कहते हैं।

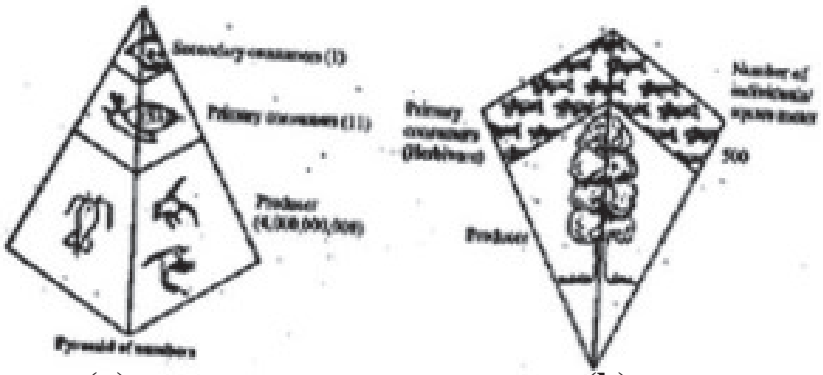

(a) (b)

चित्र : 1 संख्याओं का पिरैमिड पारितंत्र के भीतर प्रत्येक पोषण स्तर पर जीवों की संख्या दर्शाता है। (a) एक सीधा खड़ा संख्याओं का पिरैमिड (b) एक उलटा, संख्याओं का पिरैमिड।

परंतु संख्याओं के पिरैमिड में सभी जीवों को गिन सकना बहुत कठिन है इसलिए संख्या के पिरैमिड से पारितंत्र की पोषण संरचना को ठीक से परिभाषित नहीं करता। संख्याओं के पिरैमिड में इस बात का समावेश नहीं है कि प्रत्येक पोषण स्तर पर गिने जा रहे जीवों का आकार भिन्न हो सकता है। किसी वन के भीतर कुछ संख्या में बड़े उत्पादक (विशाल वृक्ष) होंगे जिन पर बहुत से शाकाहारियों का भरण पोषण होता होगा। परिणामत: यह पिरैमिड एक उल्टी शक्ल ले लेगा जैसा का कि आप चित्रमें देख रहे हैं। ऐसा इसलिए कि वृक्ष एक बड़ा उत्पादक है और वह पिरैमिड का आधार है तथा उस पर निर्भर शाकभक्षी और अगले स्तर के मांसभक्षी क्रमश: दूसरा और तीसरा पोषण स्तर दर्शाएंगे। इस प्रकार आकार (साइज) तथा जैवसंहति पर निर्भर करते हुए संख्याओं का पिरैमिड हो सकता है सदैव सीधा खड़ा न हो कर पूर्णत: उलटा भी हो सकता है।

जैवसंहति का पिरैमिड (Pyramid of biomass)

संख्याओं के पिरैमिड की कमियों से पार पाने के लिए जैवसंहति का पिरैमिड इस्तेमाल किया जाता है । इस अभिगम (पहुंचमार्ग) में प्रत्येक पोषण स्तर के व्यष्टियों को तोला जाता है न कि गिना जाता है। इससे हमें जैवसंहति का पिरैमिड मिलता है अर्थात् किसी एक विशिष्ट समय प्रत्येक पोषण स्तर के समस्त जीवों का कुल मिलाकर शुष्क भार। जैवसंहति के पिरैमिड को निधारित करने के लिए प्राय: अलग-अलग प्रत्येक पोषण स्तर पर मौजूद समस्त जीवों को एकत्रित करके और उनके शुष्क भार का मापन किया जाता है। इस विधि से जीवों के साइज के अंतर की समस्या दूर हो जाती है क्योंकि पोषण स्तर के सभी प्रकार के जीवों को तोला जाता है। जैवसंहति को g/m^2 इकाईयों में मापा जाता है। प्रतिचयन के समय जैवसंहति की मात्रा को **खड़ी फसल** (standing crop) अथवा **खड़ी जैवसंहति** (standing biomass) कहा जाता है। थल पर पाए जाने वाले अधिकतम् पारितंत्रों के लिए, जैवसंहति के पिरैमिड में एक बड़ा आधार प्राथमिक उत्पादकों से बनता है तथा शीर्ष पर एक लघुतर पोषण स्तर होता है।

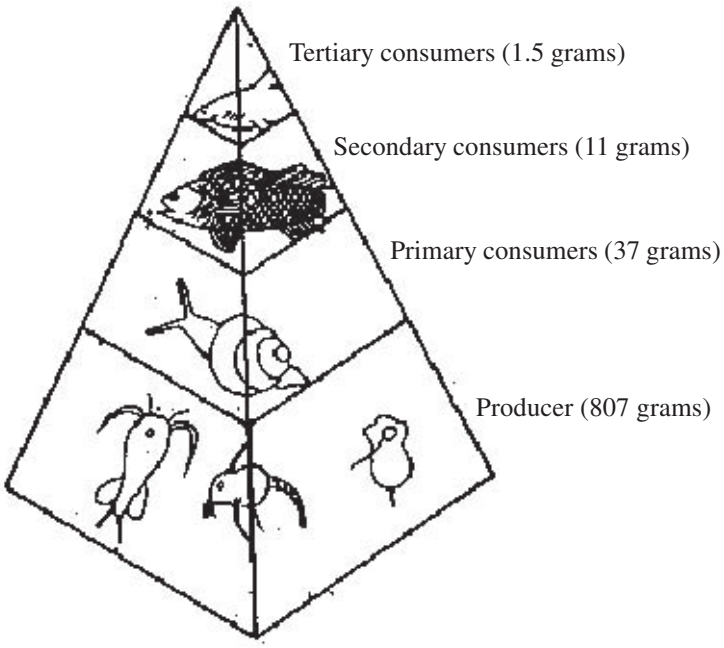

Pyramid of biomass

चित्र : जैवसंहति के पिरैमिड में प्रत्येक स्तर पर आश्रित जीवों का कुल भार दर्शाया गया होता है।

इसके विपरीत अनेक जल पारितंत्रों में जैवसंहति का पिरैमिड उलटा हो सकता है। ऐसा इसलिए कि जल पारितंत्र के उत्पादक सूक्ष्म पादपप्लवक (phytoplanktons) होते हैं जो बड़ी तेजी से वृद्धि करते एवं जनन करते रहते हैं। इसमें जैव संहति के पिरैमिड में आधार छोटा हो सकता है और किसी भी समय उपभोक्ता की जैवसंहति उत्पादक संहति से अधिक होगी। पादपप्लवकों को लगभग उतनी ही तेजी से खा लिया जाता है जितनी तेजी वे से जनन करते हैं, जो जीवित बच जाते हैं (और वे थोड़े ही होते हैं) अत्यन्त तेज गति से जनन करते हैं।

ऊर्जा का पिरैमिड (Pyramid of energy)

जब कभी हम किसी पारितंत्र के विभिन्न पोषण स्तरों की कार्यात्मक भूमिकाओं की तुलना करनी चाहें तो कदाचित् ऊर्जा पिरैमिड ही सबसे अच्छा सूचनाप्रदायी होता है क्योंकि उसमें व्यष्टियों के आमाप और भार की भिन्नताओं पर जरूरत से ज्यादा महत्व देकर उसे विकृत नहीं किया गया होता है। ऊर्जा पिरैमिड ऊष्मागतिकी (Thermodynamics) के नियमों का पालन करता है, इसमें सौर ऊर्जा का रासायनिक ऊर्जा एवं ऊष्मा ऊर्जा में परिवर्तन प्रत्येक पोषण स्तर पर होता है और साथ ही एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर पर होने वाली ऊर्जा-हानि को भी दिखाया जाता है। अत: यह पिरैमिड सदैव सही दिशा में ऊपर को होता है जिसमें एक बड़ा ऊर्जा-आधार तली

में होता है। ऊर्जा पिरैमिड जिन चार बातों पर आधारित होनी चाहिए वे हैं- एक, व्यष्टियों द्वारा भीतर ले जायी जाने वाली ऊर्जा की वास्तविक मात्रा, दो, वे अपने उपापचय में उसकी कितनी मात्रा खर्च कर डालते हैं, तीन, उसकी कितनी मात्रा उनके अपशिष्ट उत्पादों में बची रह जाती है तथा चार, वे कितनी मात्रा को अपने शरीर के ऊतकों में भण्डारित किए रहते हैं।

ऊर्जा के पिरैमिड में किसी भी निर्दिष्ट पोषण स्तर पर उससे तुरंत पहले के पोषण स्तर की ऊर्जा-मात्रा की तुलना में कम ऊर्जा होती है। ऐसा इसलिए कि जैसा आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि जब भी ऊर्जा का एक पोषण स्तर से अगले पोषण स्तर में स्थानांतरण होता है तब सदा ही कुछ ऊर्जा की हानि होती है। आइए, इसे एक उदाहरण की सहायता से समझें। मान लिया किसी एक पारितंत्र में किसी एक पूरे दिन में 1000 कैलोरी प्रकाश ऊर्जा पहुंचती है। इस ऊर्जा का अधिकतर भाग अवशोषित नहीं होता, कुछ वापिस अंतरिक्ष में को परावर्तित हो जाती है और जितनी ऊर्जा अवशोषित हुई उसका भी एक थोड़ा-सा ही अंश हरे पौधे उपयोग में लाते हैं, उसमें से कुछ ऊर्जा पौधा स्वयं अपने श्वसन में उपयोग में ले आता है और इस प्रकार 1000 कैलोरी में से केवल 100 कैलोरी ही ऊर्जा-सम्पन्न द्रव्यों में भण्डारित होती है।

अब मान लीजिए कि कोई एक जानवर जैसे कि हिरण 100 कैलोरी से युक्त खाद्य ऊर्जा वाले पौधे को खाता है। इसके कुछ अंश को हिरण अपने उपापचय में इस्तेमाल कर लेता है और केवल 10 कैलोरी ही खाद्य-ऊर्जा के रूप में भण्डारित करता है। हिरण को खाने वाले शेर को तो और भी कम मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है। तो इस प्रकार उपयोगशील ऊर्जा की मात्रा की सूर्य के प्रकाश से उत्पादक और उसके आगे शाकभक्षी और फिर मांस-भक्षी में घटती जाती है। इसलिए ऊर्जा का पिरैमिड सदैव सीधा होगा। इस पिरैमिड की प्रत्येक शलाका उस ऊर्जा-मात्रा को दर्शाती है जो उस पोषण स्तर पर उपयोग में लायी जाती है। ऊर्जा के निवेशों तथा उत्पादों को इस प्रकार परिकलित किया जाता है कि ऊर्जा-प्रवाह को किसी इकाई समय पर थल के प्रति इकाई क्षेत्रफल अथवा जल के प्रति इकाई आयतन में ऊर्जा-प्रवाह व्यक्त किया जा सकता है। माप की इकाई kcal/m^2/y है जिसमें kcal ऊर्जा है, m^2 इकाई क्षेत्रफल तथा y वर्ष दर्शाते हैं।

पारितंत्रों के प्रकार (Types of Ecosystems)

स्थलीय पारितंत्र Terrestrial Ecosystems)	**जलीय पारितंत्र (Aquatic Ecosystems)**
वन	तालाब
चरागाह	झील
अर्धशुष्क क्षेत्र	दलदल
रेगिस्तान	नदी
पर्वत	डेल्टा
द्वीप	समुद्र

इनमें से हर पारितंत्र के बारे में हमें चार बुनियादी बातों को समझना होगा:

1. पारितंत्र की प्रकृति क्या है? उसकी संरचना (ढांचा, structure) क्या है और कार्य (functions) क्या हैं?
2. उस पारितंत्र का उपयोग कौन करता है और किसलिए?
3. उस पारितंत्र का ह्रास कैसे होता है?
4. दीर्घकाल में उसे ह्रास से बचाने के लिए क्या किया जा सकता है? उस पारितंत्र का संरक्षण कैसे हो सकता है?

स्थलीय पारितंत्र (terrestrial ecosystems) : अपने प्राकृतिक स्वरूप में विभिन्न प्रकार के वनों, चरागाहों, अर्धशुष्क क्षेत्रों, रेगिस्तानों में और समुद्रतटों पर मिलता है। इनमें से जिन पारितंत्रों की भूमि का गहन उपयोग हुआ, वो धीरे-धीरे हजारों साल की अवधि में खेतिहर और पशुपालक क्षेत्रों में परिवर्तित हो गए। हाल के वर्षों में ऐसे क्षेत्रों को सघन सिंचाई वाले खेतिहर पारितंत्र या नगर और उद्योग केन्द्रों में परिवर्तित कर दिया गया है। इसके कारण खाद्य उत्पादन बढ़ा है तथा जिन 'उपभोक्ता' वस्तुओं का हम प्रयोग करते हैं उनके लिए कच्चा माल भी मिलता है। फिर भी, भूमि और प्राकृतिक पारितंत्रों के अति-उपयोग और दुरुपयोग से हमारे पर्यावरण का गंभीर ह्रास हुआ है। मिट्टी, जल, जंगलों की जलावन लकड़ी, इमारती लकड़ी, चरागाहों की घासों और जड़ी-बूटियों का अनिर्वहनीय उपयोग और बार-बार घासों के जलाए जाने से इन प्राकृतिक पारितंत्रों का ह्रास होता है। इसी तरह संसाधनों का गलत उपयोग प्राकृतिक पारितंत्रों से मिलने वाले लाभों को समाप्त कर सकता है। प्रकृति की इन प्रक्रियाओं-प्रकाश-संश्लेषण, जलवायु नियंत्रण, मृदा अपरदन (मिट्टी का कटाव) नियंत्रण-में अनेक मानवीय कार्यकलापों ने विध्न डाला है।

वन्य पारितंत्र (Forest ecosystems)

वन पौधों का समुदाय होता है। उसकी संरचना मुख्यत: उसके पेड़ों, झाड़ियों, लताओं और भू-आवरण से निर्धारित होती है। प्राकृतिक वनस्पति सुव्यवस्थित कतारों में बोए पौधों से बहुत भिन्न नजर आती और होती है। अधिकांश अछूते 'प्राकृतिक' वन मुख्यत: हमारे राष्ट्रीय पार्कों और अभयारण्यों में स्थित हैं। वन्य भूदृश्य एक-दूसरे से बहुत भिन्न दिखाई देते हैं और उनकी मनोहारी भिन्नता प्रकृति की सुंदरता को बढ़ाता है। विभिन्न प्रकार के वन विभिन्न प्रकार के जीव-समुदायों के आवास होते है जो उनमें रहने के लिए अनुकूलित होते हैं।

वन्य पारितंत्र क्या है?

वन्य पारितंत्र के दो भाग होते हैं:

- **वन के जीवनविहीन या अजैव पक्ष :** कोई वन किस प्रकार का होगा यह उस क्षेत्र की अजैव दशाओं पर निर्भर करता है। पहाड़, पहाड़ियों के वन नदी-घाटियों के वनों से भिन्न होते हैं। वनस्पति वर्षा और स्थानीय तापमान पर निर्भर होती है; यह अक्षांश, ऊंचाई और मिट्टी के प्रकार के अनुसार अलग-अलग होती है।

- **वन के जीवनयुक्त या जैविक पक्ष :** पौधों और पशुओं के समुदाय वन के सभी प्रकारों के लिए अलग-अलग होते हैं। मसलन शंकुधारी पेड़ हिमालय क्षेत्र में होते हैं, मैनग्रोव वृक्ष नदियों के डेल्टाओं में होते हैं, कांटेदार पेड़ शुष्क क्षेत्रों में उगते हैं। बर्फ का तेंदुआ हिमालय क्षेत्र में रहता है जबकि चीते और बाघ शेष भारत के जंगलों में पाए जाते हैं। जंगली भेड़ें और बकरियां हिमालय के ऊंचे क्षेत्रों में होती हैं तथा हिमालयी वनों के अनेक परिंदे बाकी भारत के परिंदों से भिन्न होते हैं। पश्चिमी घाट और पूर्वोत्तर भारत के सदाबाहर वनों में पशुओं और पौधों की प्रजातियों की सबसे अधिक विविधता है।

भारत में वनों के प्रकार : वन का प्रकार किसी क्षेत्र की जलवायु और मिट्टी की विशेषता जैसे अजैव तत्त्वों पर निर्भर होता है। भारत के वनों को मोटे तौर पर **शंकुधारी वनों** (coniferous forests) और **विस्तीर्णपर्णी वनों** अर्थात चौड़े पत्तों वाले वनों (borad-leaved forests) में बांटा जा सकता है।

इनको उनके पेड़ों की प्रजातियों के आधार पर आगे वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे सदाबहार, पर्णपाती, मरुद्भिद (xerophytes) या कांटेदार पेड़, मैनग्रोव आदि। इनको पेड़ों की सबसे प्रचुर प्रजातियों के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे साल या टीक के जंगल। अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिसमें वन का नाम पेड़ों की तीन या चार सबसे प्रचुर प्रजातियों के नाम पर रखा जाता है।

शंकुधारी वन हिमालय पर्वत के क्षेत्र में उगते हैं जहां तापमान कम होता है। इन वनों में लंबे, शाहाना पेड़ होते हैं जिनकी पत्तियां सूई जैसी होती हैं और शाखें नीचे की ओर झुकी होती हैं ताकि बर्फ शाखों से फिसलकर नीचे आ सके। इनमें बीजों के बजाय शंकु (cones) होते हैं और ये अनावृतबीजी (gymnosperms) कहे जाते हैं।

विस्तीर्णपर्णी वन अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे सदाबहार वन (evergreen forests), पर्णपाती (deciduous forests), कांटेदार (thorn forests) और मैनग्रोव वन (mangrove forests)। इन पेड़ों में आम तौर पर विभिन्न आकृतियों वाले चौड़े पत्ते होते हैं तथा ये बीचवाले या कम ऊंचाइयों पर पाए जाते हैं।

सदाबहार वन पश्चिमी घाट, पूर्वोत्तर भारत और अंडमान-निकोबार के भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। ये वन उन क्षेत्रों में उगते हैं जहां मानसून का मौसम अनेक महीनों तक जारी रहता है। कुछ स्थानों पर दो मानसून होते हैं। पर्णपाती वनों की तरह इनका कोई पर्णहीन काल नहीं होता। इस कारण सदाबहार वन सालभर हरे-भरे दिखाई देते हैं। पेड़ों की चोटियां आपस में मिलकर लंबी-चौड़ी छतरी बनाती हैं। इसलिए वन के फर्श तक बहुत कम रोशनी पहुंचती है। जिन जगहों पर घनी छतरी से छन-छनकर थोड़ी-सी रोशनी पहुंचती है वहां जमीन पर कुछ एक छायाप्रेमी पौधे उग आते हैं। ऐसे वनों में आर्किड और फर्न बहुत होते हैं। पेड़ों की छालें काई से ढंकी होती हैं। इन वनों में वन्य प्राणी बहुत होते हैं और कीड़े-मकोड़े तो ढेरों होते हैं।

पर्णपाती वन कम मौसमी वर्षा वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहां मानसून कुछ माह तक ही जारी रहता है। टीक के पेड़ों के अधिकांश वन इसी प्रकार के होते हैं। पर्णपाती वन जाड़ों में और गर्मी के महनों में पत्ते गिराते हैं। मानसून से ठीक पहले, मार्च और अप्रैल में उन पर नए पत्ते आ जाते हैं और फिर वर्षा के कारण ये बहुत अधिक बढ़ते हैं। इस तरह पत्तों के गिरने के और फिर से छतरी के बनने के अपने-अपने काल होते हैं। इन वनों में अकसर नीचे फर्श पर घनी वनस्पति उगती है क्योंकि वन के फर्श तक रोशनी आसानी से पहुंच जाती है।

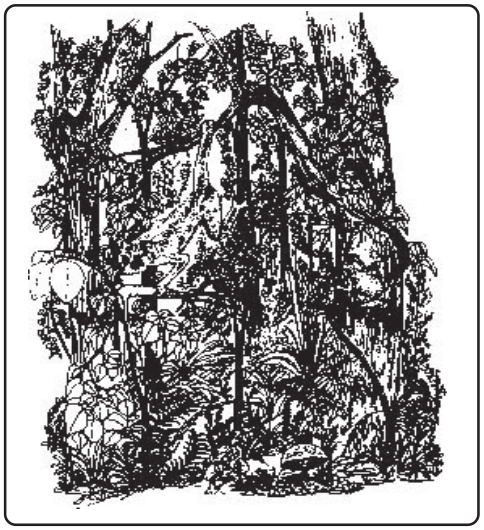

कांटेदार वन भारत के अर्धशुष्क क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इनमें पेड़ दूर-दूर स्थित होते हैं और घास के खुले क्षेत्रों से घिरे होते हैं। मरुद्भिद (xerophytes) प्रजाति कहलाने वाले कांटेदार पौधे जल-संरक्षण में समर्थ होते हैं। इनमें से कुछ पेड़ों में छोटे पत्ते होते हैं जबकि दूसरों में घने, चिकनाईदार पत्ते होते हैं जिनसे जल वाष्प बनकर कम निकलता है। कांटेदार पेड़ों में लंबी या रेशेदार जड़ें होती है जो काफी गहरे मौजूद जल तक पहुंच सकती हैं। इनमें से अनेक पेड़ों में कांटे होते हैं जो जल की हानि को कम करते हैं और पेड़ों को शाकभक्षियों से बचाते हैं।

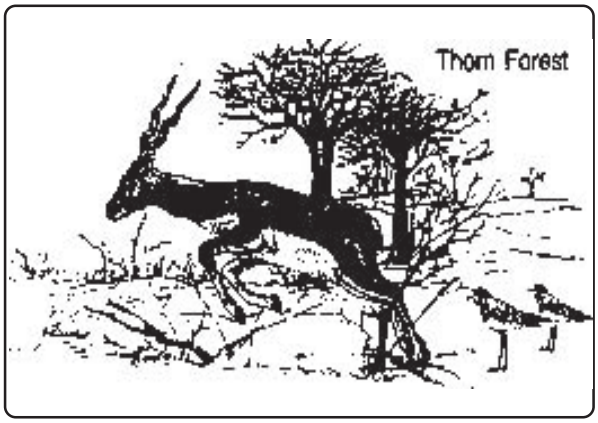

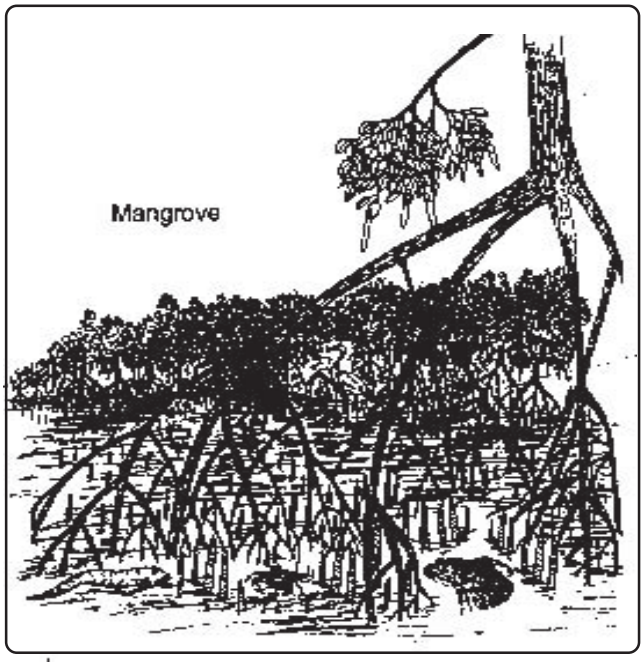

मैनग्रोव वन समुद्रतट पर, खासकर नदियों के डेल्टाओं में उगते हैं। ये पेड़ इस योग्य होते हैं कि खारे और ताजे जल के मिश्रण में बढ़ सकें। नदियों की लाई हुई गाद (silt) से ढंके कीचड़दार क्षेत्रों में ये खूब फलते-फूलते हैं। मैनग्रोव पेड़ों में सांस लेने वाली जड़ें होती है जो पंकतटों (mudbanks) से बाहर निकल आती हैं।

वन समुदाय (Forest communities)

वनों के प्रकार	पौधों के उदाहरण	आम प्राणियों के उदाहरण	दुर्लभ प्रणियों के उदाहरण
हिमालयी शंकुधारी (Himalayan Coniferous)	चीड़, देवदार	जंगली भेड़-बकरियां हिमालयी काला भालू	बर्फ का तेंदुआ, हंगुल, हिमालयी भूरा भालू, कस्तूरी मृग, हिमालयी रीछ
हिमालयी विस्तीर्णपर्णी (Himalayan Broad-leaved)	मेपिल, ओक		
सदाबहार पूर्वोत्तर भारत (Evergreen North-east)	जामुन, फाइकस	बाघ, चीता, सांभर, मलबरी	पिग्मी सूअर, गेंडा
पश्चिमी घाट, अंडमान निकोबार (Western Ghats, Andaman & Nicobar)	डिप्टेरोकार्पस	सीटीमार सरिका, मलबरी चितकबस हॉर्नबिल (घनेश), वृक्षवासी मेंढक	शेर जैसी पूंछ वाला मकाक
पर्णपाती-शुष्क (DeciduousDry)	टीक, ऐन टर्मिनेलिया	बाघ, चीतल, बार्किंग हिरन, बैबलर, फ्लाईकैचर्स, हॉर्नबिल	
पर्णपाती-नम (Deciduous-Moist)	साल		
कांटे और झाड़, अर्धशुष्क वन, (Thorn and scrub, Semi-arid forests)	बबूल, बेर, नीम	काला हिरन, चिंकारा, चारसिंगा हिरन, चकोर, मॉनिटर छिपकली	ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, फ्लोरिकन
मैनग्रोव डेल्टाई वन (Mangrove Delta Forests)	एविसेनिया	घड़ियाल, तटचिड़िया-सैंडपाइपर पक्षी, प्लोवर्स, मछली, मपड़ीदार झींगे	वाटर मॉनिटर छिपकली

वन्य पारितंत्र के लिए क्या-क्या खतरे हैं?

जंगल बहुत धीमी गति से बढ़ते हैं। इसलिए किसी एक मौसम में वे अपनी वृद्धि के दौरान जितना संसाधन दे सकते हैं, उससे अधिक का इस्तेमाल हम नहीं कर सकते। एक सीमा से आगे इमारती लकड़ी ली जाए तो जंगल का पुनर्जन्म नहीं हो सकता। वन में खालीपन आने से उसके प्राणियों के निवास की गुणवत्ता बदल जाती है, और इन बदली हुई दशाओं में अधिक नाजुक प्रजातियां जीवित नहीं रह सकतीं। वन्य संसाधनों का अति-उपयोग हमारे इन सीमित संसाधनों के उपयोग का एक अनिर्वहनीय ढंग है। आज हम अधिकाधिक ऐसी वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं जो वनों से प्राप्त कच्चे माल से बनती हैं। इससे वनों का ह्रास होता है और आखिरकार पारितंत्र एक बंजर क्षेत्र में बदल जाता है। आज अनेक जंगलों से लकड़ी की गैरकानूनी कटाई हो रही है जिससे पारितंत्र की अपूरणीय क्षति हो रही है।

विकास के कार्य, तीव्र जनसंख्या वृद्धि और साथ में नगरीकरण, उद्योगीकरण और उपभोक्ता वस्तुओं के बढ़ते उपयोग के कारण वन्य पैदावारों का अति-उपयोग हो रहा है। हमारी खेतिहर जमीन की जरूरत बढ़ने के कारण जंगल तेजी से सिमट रहे हैं। अनुमान है कि पिछली सदी में भारत का वन्य आवरण 33 से घटकर 11 प्रतिशत रह गया है। इमारती लकड़ी या कागज के लिए लुगदी के बढ़ते उपयोग और जलावन के व्यापक उपयोग के कारण वन काटे जा रहे हैं। खनन कार्य और बांधों के निर्माण से भी जंगल खत्म हो रहे

हैं। वन्य संसाधनों का जब उपयोग होता है तो वनों की छतरी टूट जाती है, पारितंत्र का ह्रास होता है, और वन्यजीवन के लिए गंभीर खतरे पैदा होते हैं। वन जब छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाता है तो उसके पौधों और प्राणियों की वन्य प्रजातियां नष्ट हो जाती हैं। फिर इनको कभी वापस नहीं प्राप्त किया जा सकता।

वन्य तारितंत्र का संरक्षण कैसे करें?

हम वनों का संरक्षण तभी कर सकते हैं जब उसके संसाधनों का सावधानी से उपयोग करें। इसके लिए हमें जलावन लकड़ी की जगह ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग करना होगा। हर साल इमारती लकड़ी के लिए जितने वन काटे जाते हैं, उससे अधिक वन लगाने की आवश्यकता है। वनरोपण निरंतर होना चाहिए ताकि उसकी जलावन और इमारती लकड़ी का विवेकपूर्ण उपयोग किया जा सके।

तमाम विविध प्रजातियों के साथ प्राकृतिक वनों का संरक्षण राष्ट्रीय पार्कों और अभयारण्यों के रूप में करना होगा जहां तमाप पौधे और पशु-पक्षी सुरक्षित रह सकें।

चरागाही/घासस्थली पारितंत्र (Grassland ecosystems)

अनेक प्रकार के भूदृश्य (landscapes), जिनमें वनस्पति मुख्यत: घासों और छोटे सालाना पौधों के रूप में होती है, भारत की विभिन्न जलवायवीय दशाओं (climatic conditions) के लिए खासतौर पर उपयुक्त हैं। इन्हीं से अनेक प्रकार के चरागाही अथवा घासस्थली पारितंत्र बनते हैं जिनके अपने-अपने विशिष्ट पौधे और प्राणी होते हैं।

चरागाही पारितंत्र क्या है?

चरागाह अथवा घासस्थल ऐसे क्षेत्र हैं जहां वर्षा प्राय: कम होती है और/या मिट्टी की गहराई और गुणवत्ता कम होती है। कम वर्षा होने से बड़ी संख्या में यहां पेड़ और झाड़ नहीं उग सकते, पर इतनी वर्षा मानसून में घास के आवरण को पैदा करने के लिए पर्याप्त होती है। गर्मी के महीनों में घास और छोटी झाड़ियां सूख जाती हैं और उनकी सतह से ऊपर का भाग मर जाता है। अगले मानसून में बची हुई जड़ों और पिछले साल के बीजों से घास का आवरण फिर से उग आता है। यह परिर्वतन चरागाहों को अत्यधिक मौसमी रूप दे देता है जिसमें उनकी वृद्धि के कालों के बाद एक सुषुप्तावस्था आती है।

अनेक प्रकार की घास, छोटी झाड़ियां तथा कीड़ों, पक्षियों और स्तनपाइयों की अनेक प्रजातियों का विकास इस तरह से हुआ है कि वे इन खुले और विस्तृत घास के मैदानों में रह सकती हैं। ये पशु ऐसी दशाओं में रह सकते हैं जहां वर्षा के बाद भोजन की बहुतायत हो; इसे वे वसा (चर्बी) के रूप में जमा कर लेते हैं जिसका उपयोग वे शुष्क काल में करते हैं जब खाने को कुछ नहीं होता। प्राचीन काल में मनुष्य ने जब पशुओं को पालतू बनाया तो उनको खिलाने के लिए इन चरागाहों का उपयोग आरंभ किया और इस प्रकार पशुपालक (pastoralist) बन गया।

भारत में चरागाहों के प्रकार (Types of grasslands in India) : विभिन्न जलवायवीय दशाओं में चरागाहों के अनेक प्रकार के पारितंत्र होते हैं।

हिमालयी चरागाह की पट्टी (Himalayan pasture belt) : हिमरेखा (snowline) तक फैली हुई है और नीचे की चरागाहें शंकुधारी और विस्तीर्णपर्णी जंगलों के साथ लगी पट्टियां हैं। हिमालयी प्राणियों को अपने आवास के रूप में वन्य और चरागाही, दोनों पारितंत्रों की आवश्यकता होती है। ये पशु गर्मियों में ऊंचाई वाली चरागाहों में चले जाते हैं और जाड़े में ये चरागाहें जब बर्फ से ढंक जाती हैं तो ये नीचे के वनों में वापस आ जाते हैं। इन हिमालयी चरागाहों में घास और झाड़ियों की भारी विविधता मौजूद है। हिमालयी ढलानें हजारों रंगबिरंगे फूलदार पौधों और बड़ी संख्या में जड़ी-बूटियां देने वाले पौधों से ढंकी हुई हैं।

तराई क्षेत्र में लंबी घास के मैदान और बीच-बीच में साल वनों के पारितंत्र हैं। हाथी समान ऊंची ये घास, जो पांच मीटर तक बढ़ जाती हैं, नीचे के जलभराव वाले क्षेत्रों में स्थित हैं। ऊंचे क्षेत्रों और हिमालयी ढलानों को साल वनों के टुकड़े ढंके हुए हैं। तराई क्षेत्र के गड्ढेदार हिस्सों में दलदलें भी पाई जाती हैं। यह पारितंत्र हिमालय की तलहटी के दक्षिण में एक पट्टी के रूप में फैला हुआ है।

पश्चिमी भारत, मध्य भारत और दकन के अर्धशुष्क मैदानों में घास की चरागाहें फैली हुई हैं और बीच-बीच में कांटेदार जंगल आते हैं। भेड़िये, काले हिरन, चिंकारे जैसे अनेक स्तनपायी पशु तथा फ्लोरिकन जैसे अनेक पक्षी इन शुष्क दशाओं में रहने में समर्थ हैं। दकन के पठार के झाड़ वाले इलाके ऐसी मौसमी घास और कंदमूल से भरे हुए हैं जिन पर वहां के प्राणी आश्रित हैं। ये ऐसे कीड़े-मकोड़ों से भी भरे हुए हैं जिन पर कीटभक्षी परिंदे जीवित रहते हैं।

शोल चरागाहें पश्चिमी घाट, नीलगिरी और अन्नामलाई पर्वतमालाओं की शोल वनों के बीच-बीच में, उनकी ढालों पर स्थित हैं। ढालों पर घास की चरागाहें तथा नदी-नालों के किनारे और निचाई पर स्थित क्षेत्रों में वन्य आवास हैं।

चरागाही पारितंत्रों के सामने क्या खतरे हैं?

पशुपालक समुदाय अनेक क्षेत्रों में सदियों से चरागाहों अथवा घासस्थलों का उपयोग करते आ रहे हैं। ग्रामीण समुदायों की 'शमिलाती चरागाहों' के अति-उपयोग और भूमि के उपयोग में परिवर्तन से इनका ह्रास हुआ है। **स्थायी चरागाहों की दृष्टि से देश की मात्र 3.7 प्रतिशत भूमि ही आज घास का मैदान है। चरागाहों का सिंचित खेतों में परिवर्तन कर दिया जाना प्राकृतिक चरागाहों के लिए प्रमुख खतरा है।** दक्कन में चरागाहों को सिंचित खेत बना दिया गया है और आज उनका उपयोग मुख्यत: गन्ना उगाने के लिए किया जाता है जो एक जलभक्षी फसल है। निरंतर सिंचाई के कारण ये खेत खारे और कुछ वर्षों में बेकार हो जाते हैं। हाल के वर्षों में बाकी बचे घास के मैदानों में से अनेक को औद्योगिक क्षेत्रों में बदल दिया गया है। इससे तात्कालिक आर्थिक लाभ तो मिलते हैं पर आगे चलकर आर्थिक और पर्यावरणीय हानियां होती हैं।

पालतू और वन्य प्राणियों को सहारा देने की घास के मैदानों की क्षमता सीमित होती है। पालतू पशुओं की संख्या बढ़ने पर दबाव के बढ़ने से चरागाही पारितंत्र का 'प्राकृतिकपन' कम होता है और उसका ह्रास होता है।

अधिकांश चरागाही पारितंत्र मानव के कार्यकलाप के कारण बहुत अधिक बदल चुके हैं। मवेशियों, भेड़ों और बकरियों की चराई और बार-बार की आग, ये सब चरागाहों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। चरागाहों का अधिकाधिक उपयोग अगर कृषि, बागान और उद्योगों के लिए किया जाए, तो इससे इस अत्यधिक उत्पादक पारितंत्र के लिए गंभीर खतरे पैदा होते हैं। इसलिए घास के उन मैदानों का तत्काल संरक्षण आवश्यक है जिनमें कम फेरबदल हुए हैं और जो अपने विशेष पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों को संजोए हुए हैं।

चरागाही प्रजातियों का लोप क्यों हो रहा है?

बहुत-से लोग समझते हैं कि वनों और वन्य प्रजातियों का ही लोप हो रहा है, जबकि चरागाहों जैसे दूसरे प्राकृतिक पारितंत्रों का लोप और भी तेजी से हो रहा है।

भारत के अनेक भागों में अनेक घासस्थली प्रजातियां, जो 50 या 60 साल पहले पाई जाती थीं, अब विलुप्त हो रही हैं। चीता भारत में लुप्त हो चुका है, भेड़िये के लिए भारी खतरा सामने है, मांस के लिए काले हिरन और चिंकारा का शिकार किया जा रहा है, सुंदर भारतीय सोहनचिड़िया (Great Indian Bustard) जैसे पक्षी गायब हो रहे हैं। अगर घासस्थली प्रजातियों का संरक्षण नहीं किया जाता तो वे आवास की कमी के कारण नष्ट हो जाएंगे क्योंकि प्राकृतिक और अप्रभावित घासस्थल बहुत कम बचे हैं। अगर ये पशु-पक्षी मर गए या उनके आवास और कम हो गए तो उनके विलुप्त होने की प्रक्रिया और तेजी से बढ़ेगी।

चरागाही पारितंत्रों का संरक्षण कैसे संभव है?

चरागाहों में अत्यधिक चराई नहीं होनी चाहिए और उनके कुछ भागों में तो चराई पर प्रतिबंध होना चाहिए। मवेशियों के स्थान पर खिलाने के लिए घास काटकर लाना बेहतर है। किसी क्षेत्र में चरागाह का एक भाग हर साल बंद कर देना चाहिए ताकि चराई में एक आवर्ती ढर्रा बन सके। आगों की रोकथाम होनी चाहिए और आग लगने पर उस पर तेजी से नियंत्रण होना चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों में छोटे-छोटे जलग्रहण क्षेत्रों में मिट्टी और जल का प्रबंध करके चरागाहों को फिर से प्राकृतिक, अत्यधिक उत्पादक पारितंत्र बनाया जा सकता है।

मरुस्थली पारितंत्र (Desert ecosystems)

मरुस्थली और अर्धशुष्क (semi-arid) क्षेत्र अत्यंत विशेष प्रकार के और संवेदनशील पारितंत्र हैं जो मानवीय कार्यकलापों से प्रभावित होकर आसानी से नष्ट हो जाते हैं। इन खुश्क क्षेत्रों की प्रजातियां इस विशेष आवास में ही रह सकती हैं।

मरुस्थली या अर्धशुष्क पारितंत्र क्या है?

मरुस्थल और अर्धशुष्क क्षेत्र मुख्यत: पश्चिम भारत और दकन के पठार में स्थित हैं। इन विशाल क्षेत्रों में मौसम बेहद शुष्क होता है। लद्दाख जैसे ठंडे मरुस्थल भी हैं जो हिमालय के ऊंचे पठारों में स्थित हैं। सबसे आम प्रकार का मरुस्थल थार का रेगिस्तान है जो राजस्थान में स्थित है। यहां रेत के टीले होते हैं और कहीं-कहीं घास या झाड़ियों वाले क्षेत्र भी मिलते हैं; ये झाड़ियां वर्षा होने पर बढ़ जाती हैं। थार के अधिकांश भागों में वर्षा बहुत कम और कभी-कभी होती है। कुछ इलाकों में तो अनेक वर्षों में एक बार वर्षा होती है। साथ में लगे अर्धशुष्क क्षेत्र में वनस्पति कुछ एक झाड़ियों तथा खैर और बबूल जैसे कांटेदार पेड़ों तक ही सीमित होता है।

कच्छ के बड़े और छोटे रन अत्यंत विशिष्ट शुष्क पारितंत्र हैं। गर्मियों में ये रेगिस्तान से मेल खाते हैं। लेकिन चूंकि ये समुद्र के पास और निचाई पर स्थित क्षेत्र हैं, इसलिए वे मानसून में खारे दलदल में बदल जाते हैं। इस काल में यहां बतख, हंस, सारस और बगुले जैसे पानी के पक्षी बड़ी संख्या में आकर्षित होकर आते हैं। **बड़ा रन हमारे देश में बड़े और छोटे फ्लेमिंगो पक्षियों के अकेले ज्ञात प्रजनन स्थल के रूप में मशहूर है। कच्छ का छोटा रन भारत में जंगली गधों का एकमात्र क्षेत्र है।**

रेगिस्तानी और अर्धशुष्क क्षेत्रों में अनेक अत्यंत विशिष्ट कीड़े-मकोड़े और रेंगने वाले प्राणी (सरीसृप) पाए जाते हैं। दुर्लभ पशुओं में भारतीय भेड़ियों, रेगिस्तानी बिल्ले, रेगिस्तानी लोमड़े और पक्षियों में ग्रेट इंडियन बस्टर्ड और फ्लोरिकन शामिल हैं। कुछ अधिक आम परिंदों में तीतर, बटेर और भाट तीतर (sand-grouse) शामिल हैं।

मरुस्थली और अर्धशुष्क पारितंत्रों का उपयोग कैसे होता है?

अर्धशुष्क झाड़ीदार इलाकों और कम वनस्पति वाले क्षेत्रों का उपयोग राजस्थान और गुजरात में ऊंटों, मवेशियों और बकरियों को तथा दकन के पठार में भेड़ों को चराने के लिए किया जाता है।

जिन क्षेत्रों में, जैसे जलाशयों के पास, थोड़ी-सी नमी होती है उनका उपयोग ज्वार-बाजरा उगाने के लिए किया जाता है। ये प्राकृतिक घासें और फसलों की स्थानीय किस्में इस योग्य बन चुके हैं कि बहुत कम नमी में भी उग सकें। इनका उपयोग भविष्य में आनुवंशिक इंजीनियरी (genetic engineering) के लिए और अर्धशुष्क भूमियों की फसलों के विकास के लिए किया जा सकता है।

मरुस्थली पारितंत्रों के सामने क्या खतरे हैं?

विकास की रणनीतियों और मनुष्य की जनसंख्या वृद्धि ने मरुस्थली और अर्धशुष्क भूमियों के प्राकृतिक पारितंत्र को प्रभावित करना आरंभ कर दिया है। सिंचाई की व्यापक व्यवस्था के द्वारा इन भूमियों को सींचे जाने से इस क्षेत्र की प्रकृति में बदलाव आया है। नहर का जल जल्दी वाष्प बनकर सतह पर लवण छोड़ जाता है। खारा बनकर यह क्षेत्र अनुत्पादक हो जाता है।

मरुस्थली पारितंत्रों का संरक्षण कैसे संभव है?

मरुस्थली पारितंत्र अत्यंत संवेदनशील होते हैं। मरुस्थलों का पारितंत्रीय संतुलन जिसके कारण वे पौधों और प्राणियों के आवास हैं, आसानी से भंग हो सकता है। मरुस्थल निवासियों ने अपने मामूली जल संसाधनों को परंपरागत ढंग से बचाकर रखा है। **राजस्थान की बिशनोई जाति के बारे में ज्ञात है कि वह अनेक पीढ़ियों से अपने खेजड़ी (khejdi) पेड़ों और काले हिरन की रक्षा करती आई है।** यह परंपरा तब शुरू हुई जब उनके क्षेत्र के राजा ने अपनी सेना को अपने उपयोग के वास्ते पेड़ों को काटने के लिए भेजा। कहते हैं कि अपने पेड़ों की रक्षा करते हुए अनेक बिशनोइयों ने अपनी जानें दीं।

आज रेगिस्तानी और अर्धशुष्क क्षेत्रों में स्थित राष्ट्रीय पार्कों और अभयारण्यों में इस पारितंत्र के बचे-खुचे टुकड़ों की रक्षा की तात्कालिक आवश्यकता है। राजस्थान की इंदिरा गांधी नहर इस महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक शुष्क पारितंत्र को नष्ट कर रही है क्योंकि वह इस क्षेत्र को सघन खेती वाले क्षेत्र में बदल देगी। कच्छ में छोटे रन के इलाके, जो जंगली गधों के एकमात्र ठिकाने हैं, लवण निर्माण के प्रसार के कारण नष्ट हो जाएंगे।

जलीय पारितंत्र (Aquatic ecosystems)

जलीय पारितंत्रों में समुद्रों के पर्यावरण तथा झीलों, नदियों, तालाबों और नमभूमियों जैसे ताजे जल के पारितंत्र आते हैं। ये पारितंत्र मनुष्य को बहुत-से प्राकृतिक संसाधन देते हैं। ये मछली और झींगा जैसे खाद्य पदार्थ प्रदान करते हैं। **नदी और समुद्र जैसे प्राकृतिक जलीय पारितंत्र मनुष्य द्वारा उत्पन्न रासायनिक और जैविक कचरों का विघटन करते हैं।**

जलीय पारितंत्र क्या है?

जलीय पारितंत्रों में पौधे और प्राणी जल में रहते हैं। ये प्रजातियां विभिन्न प्रकार के जलीय आवासों में रहने में समर्थ हैं। जलीय पारितंत्र की विशिष्ट अजैविक विशेषताएं इसके भौतिक पक्षों में होती हैं, जैसे पानी की किस्म जिसमें उसकी स्वच्छता, खारापन, ऑक्सीजन की मात्रा और प्रवाह की दर शामिल हैं। जलीय पारितंत्रों को स्थिर (stagnant) पारितंत्रों और प्रवाहमान जल वाले (running water) पारितंत्रों में बांटा जा सकता है। जलीय पारितंत्रों की तलहटी के कीचड़, कंकड़ और चट्टानी टुकड़े उसकी विशेषताओं को परिवर्तित करते हैं और उसके पौधे और प्राणियों की संरचना को प्रभावित करते हैं। जलीय पारितंत्रों को ताजे जल (fresh water), मटमैल जल (brackish water) और सागर जल (marine water) के पारितंत्रों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है जो खारेपन के स्तर पर आधारित होता है।

ताजे जल के जिन पारितंत्रों में जल प्रवाहमान होता है वे हैं नदियां और नाले। ताल-तलैये और झीलें ऐसे पारितंत्र हैं जिनमें जल प्रवाहमान नहीं होता। नमभूमियां (wetlands) ऐसे विशेष पारितंत्र हैं जिनमें विभिन्न मौसमों में जल के स्तर में नाटकीय बदलाव आते रहते हैं। ये जलीय वनस्पतियों से भरे, छिछले जल वाले क्षेत्र हैं जो मछलियों, झींगों और जलचर परिंदों के लिए आदर्श आवास हैं।

समुद्री पारितंत्र खारे होते हैं जबकि नदी के डेल्टा जैसे मटमैले जलवाले क्षेत्रों में खारापन कम होता है। प्रवाल भित्तियां (coral reefs) प्रजातियों से भरी होती हैं और ये छिछले उष्णकटिबंधीय समुद्रों में ही पाई जाती हैं। **भारत में सबसे समृद्ध प्रवाल भित्तियां अंडमान-निकोबार द्वीपों के इर्दगिर्द और कच्छ की खाड़ी में हैं।**

नदियों के डेल्टों में मटमैले जल वाले पारितंत्रों में मैनग्रोव वन पाए जाते हैं और ये जैवभार के उत्पादन की दृष्टि से संसार के सबसे उत्पादक पारितंत्र हैं। मैनग्रोव की सबसे बड़ी दलदल गंगा नदी के डेल्टा में स्थित सुंदरवन है।

तालाब का पारितंत्र

तालाब ऐसा जलीय पारितंत्र है जिसका अवलोकन करना सबसे आसान है।

एक अस्थायी तालाब तथा एक बड़े तालाब या झील में अंतर होता है। पहले में जल केवल वर्षा ऋतु में होता है जबकि दूसरे में साल भर जल रहता है। वर्षाकाल के समाप्त होने के बाद अधिकांश तालाब सूख जाते हैं और बाकी साल स्थलीय पौधों से ढंके रहते हैं।

वर्षाकाल के आरंभ के बाद जब तालाब भरने लगता है तो उसके जीवनरूप, जैसे शैवाल (algae) और सूक्ष्मप्राणी, पानी के कीड़े, घोंघे और केंचुए तालाब की तली से, जहां वे सूखे के दिनों में सोए पड़े रहते हैं, बाहर आ जाते हैं। धीरे-धीरे केकड़ों, मेंढकों और मछलियों जैसे अधिक जटिल प्राणी भी वापस आ जाते हैं। जलीय वनस्पति में तैरती काई और किनारे के जड़दार पौधे शामिल होते हैं जिनकी जड़ें पानी के नीचे कीचड़दार तली में होती हैं और पत्ते पानी की सतह से ऊपर आ जाते हैं। वर्षाकाल में जब तालाब भरता है तो बहुत-सी खाद्य शृंखलाएं पैदा होती हैं। कवक को सूक्ष्म प्राणी खाते हैं, सूक्ष्म प्राणियों को छोटी मछलियां खाती हैं और छोटी मछलियों पर बड़ी मांसभक्षी मछलियां जीती हैं। बड़ी मछलियों को फिर किंगफिशर, बगुले और दूसरे पक्षी खाते हैं। जल के कीड़े, केंचुए और घोंघे पशुओं के मल पर तथा मृत या सड़ते पौधों और पशुओं पर निर्भर होते हैं। उनकी क्रिया से मृत पदार्थ पोषक तत्त्वों में विघटित हो जाते हैं जिनको जलीय पौधे ले लेते हैं। इस तरह तालाब का पोषण-चक्र (nutrient cycle) पूरा हो जाता है। अस्थायी तालाब वर्षाकाल के बाद सूखने लगते हैं और आसपास की घास और स्थलीय पौधों के फैलने से अब दिखाई देनेवाला नम कीचड़ ढंक जाता है। मेंढकों, पौधों और केंचुओं जैसे प्राणी अगली वर्षा की प्रतीक्षा करते हुए कीचड़ में सोए पड़े रहते हैं।

झील का पारितंत्र

झील का पारितंत्र एक विशाल स्थायी तालाब की तरह काम करता है। उसके पौधों में एक बड़ा भाग शैवालों का होता है जिसे सूर्य से ऊर्जा मिलती है। यह ऊर्जा शैवालों को खाने वाले सूक्ष्म प्राणियों को चली जाती है। कुछ मछलियां शाकभक्षी होती हैं तथा शैवालों और जलीय पतवारों पर आश्रित होती हैं। घोंघे जैसे छोटे प्राणियों को छोटी मांसभक्षी मछलियां खाती हैं और फिर उन्हें बड़ी मांसभक्षी मछलियां खा जाती हैं। **कैटफिश जैसी कुछ विशेष मछलियां झील की कीचड़दार तली के मृत पदार्थों पर जीवित रहती हैं, इनको 'तलभक्षी' (bottom feeder) कहा जाता है।**

झील के पारितंत्र को ऊर्जा सूर्य के प्रकाश से मिलती है जो जल की सतह को भेदकर पौधों तक पहुंचती है। पौधों से यह ऊर्जा शाकभक्षियों और मांसभक्षियों को स्थानांतरित होती है। इन प्राणियों का मल जो झील की तलहटी में जमा हो जाता है, उसे तली के कीचड़ में रहने वाले छोटे प्राणी विघटित करते हैं। यह वह पोषक तत्त्व होता है जिसे जलीय पौधे ग्रहण करते हैं। इस प्रक्रिया में पौधे अपनी वृद्धि के लिए CO_2 से कार्बन लेकर आक्सीजन छोड़ते हैं। फिर इस आक्सीजन का प्रयोग जलचर प्राणी करते हैं जो अपने श्वसन तंत्र के द्वारा जल को छानते हैं।

नदी-नालों के पारितंत्र

नदी-नाले बहते जल के पारितंत्र हैं जिनमें सभी जीवनरूप बहते जल के अलग-अलग प्रवाह के अनुरूप ढले होते हैं। कुछ पौधे और प्राणी, जैसे घोंघे और बिल बनाने वाले प्राणी पहाड़ी नालों के तेज प्रवाह को भी झेल सकते हैं। पौधों और प्राणियों की दूसरी प्रजातियां, जैसे पानी के गुबरैले (water beetles) और स्केटर धीमे बहते जल में ही रह सकती हैं। मछलियों की महशीर जैसी कुछ प्रजातियां प्रजनन के लिए नदियों से ऊपर चढ़कर पहाड़ी नालों में चली जाती हैं। प्रजनन को समर्थ बनने के लिए उन्हें दर्पण जैसे साफ पानी की जरूरत होती है। पर्वतों पर वनों के विनाश से वे नाले भी मौसमी बन जाते हैं जो पहले सालभर बहते थे। इससे वर्षा के काल में आकस्मिक बाढ़ें आती हैं और मानसून के बाद नालों के सूखने पर पानी की कमी हो जाती है। नदी-नालों के पौधों और प्राणियों के समुदाय उनमें बहने वाले पानी भी स्वच्छता, प्रवाह, आक्सीजन की मात्रा तथा तलहटी की प्रकृति पर निर्भर होते हैं। नाले या नदी की तलहटी रेतीली, चट्टानी या कीचड़दार हो सकती है, और हर प्रकार की तलहटी में पौधों और प्राणियों की अपनी प्रजातियां होती हैं।

समुद्री पारितंत्र

हिंद महासागर, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी प्रायद्वीपीय भारत (peninsular India) के समुद्री पारितंत्र हैं। तटीय क्षेत्रों में समुद्र छिछला होता है जबकि और आगे यह गहरा होता है। इन दोनों के अलग-अलग पारितंत्र होते हैं। इस पारितंत्र के उत्पादक सूक्ष्म शैवालों से लेकर बड़े समुद्री पतवार (seaweeds) तक होते हैं। इनमें लाखों प्राणी प्लवक (zooplanktons) तथा तरह-तरह के अकशेरुकी प्राणी (invertebrates) होते हैं जिनका मछलियां, कछुए और समुद्री स्तनपायी जीव भोग लगाते हैं।

कच्छ तथा अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह के पास के छिछले समुद्रों में दुनिया की कुछ सबसे अविश्वसनीय प्रवाल भित्तियां (coral reefs) पाई जाती हैं। प्रजातियों की विविधता प्रवाल भित्तियों से ज्यादा केवल ऊष्णकटिबंधीय सदाबहार वनों में ही पाई जाती है। मछलियां, झींगे, तारामछली, जेलीफिश और पालिप (polyps) जो प्रवाल (coral) जमा करते हैं, छिछले सागर के इस अविश्वसनीय संसार में रहने वाले कुछ हजार प्रजातियों में से कुछ एक नाम हैं।

साथ लगे मैनग्रोव वनों के विनाश से गाद (silt) समुद्र में पहुंचती है जो प्रवालों पर जमा हो जाती है। इससे ये प्रवाल विरंजित होकर मर जाते हैं। ऐसे अनेक, भिन्न-भिन्न तटीय पारितंत्र हैं जो ज्वार (tide) पर बहुत अधिक आश्रित होते हैं।

समुद्रतट के मछुआरे समुद्री पारितंत्र से मछलियां पकड़ते हैं जो उनकी आजीविका का साधन हैं। अतीत में मछलियां निर्वहनीय ढंग से मारी जाती थीं और समुद्री पारितंत्र अनेक पीढ़ियों तक मछलियों की भरपूर आपूर्ति करता रहता था। अब विशालकाय जालों और मशीनी नौकाओं के उपयोग से मछलियों के शिकार में तीव्रता आई है और इसलिए हिंद महासागर में मछलियों की संख्या पहले से कम हो गई है।

3. जैव विविधता (BIODIVERSITY)

परिभाषा (Definition)

जैविक विविधता (biological diversity) अथवा जैव-विविधता (biodiversity) प्रकृति का वह अंग है जिसमें किसी प्रजाति के अलग-अलग सदस्यों में जीन (genes) की विविधता शामिल है; स्थानीय, क्षेत्रीय तथा वैश्विक स्तर पर पौधों और प्राणियों की तमाम प्रजातियों की विविधता और समृद्धि शामिल है तथा एक सुनिश्चित क्षेत्र में पारितंत्रों के स्थलीय प्रकार शामिल हैं।

जैव-विविधता क्या है? (What is biodiversity)

जैव-विविधता का संबंध जैवमंडल में प्रकृति की विविधता की मात्रा से है। इस विविधता को तीन स्तरों पर देखा जा सकता है–एक प्रजाति के अंदर ही जीनों का अंतर, एक समुदाय के अंदर प्रजातियों की विविधता, तथा पौधों और प्राणियों के सुस्पष्ट समुदायों में किसी क्षेत्र की प्रजातियों का संगठन।

जननिक विविधता (Genetic diversity)

पौधों या प्राणियों की किसी प्रजाति का हर सदस्य अपनी जीनों की संरचना में दूसरे सदस्यों से बहुत भिन्न होता है। इसका कारण हर सदस्य को अपनी खास विशेषताएं प्रदान करनेवाली जीनों के संभावित संयोगों की भारी संख्या है। उदाहरण के लिए, हर मनुष्य दूसरे मनुष्यों से बहुत भिन्न होता है। किसी प्रजाति की जनसंख्या के स्वस्थ प्रजनन के लिए यह जननिक अथवा आनुवंशिक विविधता अनिवार्य है। प्रजनन करने वालों की संख्या कम हो जाए तो जीनों की संरचना की असमानता कम हो जाती है और अपने सीमित जीनों में ही प्रजनन होने लगता है। इससे जननिक असमानताएं पैदा होती हैं और अंततः उस विशेष प्रजाति का विनाश हो जाता है। वन्य प्रजातियों की यह विविधता ही वह 'जीन कोष' (gene pool) है जिससे हजारों वर्षों से हमारी फसलों और हमारे पालतू पशुओं का विकास हुआ है। **इनके वन्य संबंधियों का उपयोग करके आज अधिक उत्पादक, रोग-प्रतिरोधी फसलों की नई किस्में तैयार की जा रही हैं, बेहतर मवेशी विकसित किए जा रहे हैं और इस प्रकार प्रकृति की इस देन का और भी उपयोग किया जा रहा है। आधुनिक जैव-प्रोद्योगिकी भी बेहतर दवाएं और अनेक प्रकार की औद्योगिक वस्तुएं विकसित करने के लिए जीनों में फेरबदल कर रही है।**

प्रजातीय विविधता (Species diversity)

किसी क्षेत्र में मौजूद पौधों और प्राणियों की प्रजातियों की संख्या ही उसकी प्रजातीय विविधता है। यह विविधता प्राकृतिक और खेतिहर, दोनों तरह के पारितंत्रों में देखी जाती है। प्रजातियों की दृष्टि से कुछ क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों से अधिक समृद्ध हैं। उदाहरण के लिए, इमारती लकड़ी के उत्पादन के लिए वन विभाग द्वारा विकसित फसली बागानों की अपेक्षा प्राकृतिक और अप्रभावित ऊष्णकटिबंधीय वनों में प्रजातियों की संख्या काफी अधिक है। एक प्राकृतिक वन का पारितंत्र बड़ी संख्या में इमारती लकड़ी से भिन्न अन्य वस्तुएं भी प्रदान करता है जिन पर स्थानीय जनता निर्भर होती है, जैसे फल, जलावन लकड़ी, चारा, रेशे, गोंद, रेजिन और दवाएं। इमारती लकड़ी के बागान उतनी संख्या में भिन्न-भिन्न वस्तुएं प्रदान नहीं करते जो स्थानीय उपयोग के लिए आवश्यक हैं। हम कह सकते हैं कि इमारती लकड़ी से भिन्न इन वस्तुओं से प्राप्त निर्वहनीय आर्थिक लाभ इमारती लकड़ी के लिए एक जंगल की कटाई से प्राप्त होनेवाले लाभ से अधिक होता है। इस तरह एक बागान के मुकाबले प्रजातियों से समृद्ध एक प्राकृतिक वन का व्यापारिक मूल्य काफी अधिक होता है। परंपरागत कृषि-पशुपालक खेतिहर प्रणालियों में अधिक फसलें बोई जाती थीं; उनकी अपेक्षा आधुनिक सघन खेतिहर पारितंत्रों में फसलों की विविधता कम होती है।

पारितंत्रीय विविधता (Ecosystem diversity)

पृथ्वी पर पारितंत्रीय विविधता बहुत अधिक है, और हर पारितंत्र में आवास की भिन्नताओं के आधार पर परस्पर पूरक, समृद्ध, और सुस्पष्ट प्रजातियों का अपना लोक है। पारितंत्रीय विविधता का वर्णन एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार भी किया जा सकता है और देश, राज्य या तालुका जैसी राजनीतिक इकाइयों के अनुसार भी। सुस्पष्ट पारितंत्रों में वन, घासस्थल, रेगिस्तान और पर्वत जैसे भूदृश्य भी आते हैं और नदी, झील या समुद्र जैसे पारितंत्र भी। हर इलाके में खेत या चरागाह जैसे मानव द्वारा संशोधित क्षेत्र भी आते हैं।

एक पारितंत्र को तब 'प्राकृतिक' कहा जाता है जब वह मानव के कार्यकलापों से अपेक्षाकृत अप्रभावित हो और तब 'संशोधित' कहा जाता है जब उसका दूसरे उपयोगों के लिए परिवर्तन किया जाए, जैसे खेत या नगरीय भूमि के रूप में। पारितंत्र निर्जन क्षेत्रों में सबसे अधिक प्राकृतिक होते हैं। पारितंत्रों का अति-उपयोग या दुरुपयोग करने पर उनकी उत्पादकता अंतत: कम हो जाती है और तब उनको निम्नकोटि का कहा जाता है।

उद्‌विकास और जैव-विविधता का जन्म (Evolution and the genesis of biodiversity) : कोई साढ़े तीन अरब साल पहले पृथ्वी पर जीवन का आरंभ आज भी अस्पष्ट है। जीवन का आरंभ संभवत: पृथ्वी के आदिम समुद्रों में कार्बनिक प्रतिक्रियाओं (organic reactions) के फलस्वरूप हुआ। कीचड़ में या बाहरी अंतरिक्ष से जीवन के आरंभ की वैकल्पिक संभावनाएं भी सुझाई गई हैं। पृथ्वी पर जीवन के आरंभ के बाद उसमें धीरे-धीरे विविधता भी आने लगी। एककोशिकीय अविशिष्ट रूपों (unicellular unspecialized forms) का विकास धीरे-धीरे जटिल, बहुकोशिकीय पौधों और प्राणियों के रूप में हुआ। उद्‌विकास का संबंध जीवित कायाओं की अपने वातावरण के परिवर्तनों से तालमेल करने की क्षमता से है। इस तरह प्रकृति के अजैव परिवर्तनों ने—जैसे जलवायु और वायुमंडल की उथलपुथल ने, बार-बार आनेवाले बर्फीले तूफानों ने, महाद्वीपों के अपसरण (continental drifting) और भौगोलिक बाधाओं के जन्म ने—पौधों और प्राणियों के विभिन्न समुदायों को अलग-अलग कर दिया और धीरे-धीरे, लाखों वर्षों के दौरान नई प्रजातियों का जन्म हुआ।

जैविकीय संसाधन (जैव विविधता) (Biological Resources-Biodiversity)

हमारा जीवित बने रहना नानाविध जीवों पर निर्भर होता है। इनसे जो हमें लाभ मिलते हैं उन्हें अक्सर तब तक नहीं समझ पाते जब तक कि वह प्रजाति विशेष समाप्त नहीं हो जाती। हम सब एक जीवन-आश्रयी तंत्र पर निर्भर हैं, और इस तंत्र में एक अति सम्मिश्र जीवन-जाल बना होता है तथा इस जीवन जाल में छोटे से छोटे दुर्बोध जीवों की भी अहम् भूमिका होती है, और उनका स्थान कोई भी अन्य जीव नहीं ले सकते।

19वीं शताब्दी का युग विशाल खोजों का युग रहा है, और उसके अंत में घोषणा की गयी थी कि पृथ्वी पर पाए जाने वाले अधिकांश जीवों का वर्णन किया जा चुका है। परन्तु उसके बाद के अनुसंधानों से पता चला कि अभी भी ऐसी लाखों-लाखों नयी जीव-प्रजातियां शेष हैं जिनको पहचाना जाना एवं उनका वैज्ञानिक अध्ययन किया जाना शेष है। **इस समय लगभग 17 लाख प्रजातियां जानी जा चुकी हैं जो सम्पूर्ण विद्यमान प्रजातियों की संख्या का एक छोटा सा अंश ही हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण तथा भारतीय प्राणि सर्वेक्षण द्वारा कराएं गए सर्वेक्षणों से पता चला है कि देश में पौधों की लगभग 47,000 प्रजातियां तथा प्राणियों की लगभग 81,000 प्रजातियां पायी जाती हैं।**

सर्वाधिक प्रचुर प्रजातियों में से अनेक प्रजातियां कोरी आंखों से नजर नहीं आतीं या वे ऐसे सुदूर स्थानों में रहती हैं जहां हममें से अधिकतर लोग कभी भी नहीं जाते। सर्वाधिक संख्या में पाया जाने वाला बहुकोशिक जीव एक छोटा श्रिम्प जैसा क्रस्टेशियन जीव फिल माना जाता है। जो दक्षिण ध्रुव महासागर में रहता तथा वहां के उस एक सम्पन्न खाद्य जाल का आधार माना जाता है जिसमें ह्वेलें, सील, पेंग्विन तथा मछलियां आती हैं। उसके बाद कदाचित मानव ही आते हैं जो एक एकल प्रजाति के रूप में सर्वाधिक जैवसंहति बनाते हैं (लगभग 25 करोड़ टन) भले ही संख्या के रूप में हम उतने ज्यादा नहीं हैं जितने कि अन्य जीव हो सकते हैं।

हमारा समस्त भोजन अन्य जीवों से आता है। खाया जाने वाला हमारा अधिकतर भोजन गृह्यकृत पौधों तथा जानवरों से आता है। समुद्री भोजन का स्रोत आमतौर से स्वच्छद घूमने वाले समुद्री जीवों के रूप में होता है। अनेक क्षेत्रों में जलपालन (aquaculture) (जलीय प्रजातियों का संवर्धन) एक महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत के रूप में उभरता जा रहा है, इसके अंतर्गत विश्व भर में प्रतिवर्ष एकत्रित किए जाने वाले कुल लगभग 7 करोड़ मीट्रिक टन समुद्री भोजन का 10 प्रतिशत भाग इसी जल पालन का है। अनेक देशों में जंगली पौधे भी लोगों का एक अतिरिक्त प्रिय भोजन बन गए हैं।

जैविकीय संबंध (Biotic Relations)

जैविकीय समुदाय परस्परक्रियाओं का एक बहुत ही सम्मिश्र जाल होता है। ये परस्परक्रियाएं न केवल एक ही स्पीशीज की समष्टि के विभिन्न व्यष्टियों के बीच होती हैं (अंत: जातीय संबंध, intraspecific relation) वरन् समुदाय की विभिन्न स्पीशीज के व्यष्टियों के बीच भी होती हैं अंतराजातीय संबंध (interspecific relations)।

अंत: जातीय संबंध (Intraspecific relations)

एक ही स्पीशीज के सदस्यों के बीच होने वाली परस्परक्रियाएं अंतरा जातीय संबंध कहलाती हैं, और ये संबंध प्राय: बड़े प्रबल होते हैं जो खुले संघर्ष से लेकर यूथिता (gregariousness) अर्थात् सामाजिक परस्परता तक अनेक प्रकार की होती हैं। मूज (moose) जैसी कुछ स्पीशीज काफी एकल (solitary) होती हैं मगर दूसरी ओर कुछ अन्य स्पीशीज में विभिन्न स्तरों को सामाजिक संघटना भी

पायी जाती है। अनेक स्पीशीज में क्षेत्राधिकारिता होती पायी जाती है यानी उसके व्यष्टि अपने आवास के कुछ भाग पर अपना स्वामित्व जमाने के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। विजेता क्षेत्र का उपयोग करता और हारे हुए को वहां से छोड़ कर जाना होता है। क्षेत्राधिकारिता उस क्षेत्र विशेष में किसी एक स्पीशीज के जीवों की संख्या सीमित करती हैं जिससे आहार और आवास जैसे संसाधनों के लिए विनाशकारी प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है।

अंतरा जातीय संबंध स्पीशीज के पदानुक्रम प्रतिरूप में भी अथवा समष्टि के भीतर प्रभावी तथा अधीनस्थ संबंध के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। प्रभावी तथा अधीनस्थ संबंध तब और भी अधिक सुव्यक्त होते हैं जब मैथुन-साथियों के लिए चयन संभावनाएं सामने आती हैं। चरम सामाजिक संघटना दीमकों, चींटियों, तथा मधुमक्खियों आदि की कालोनियों (निवहों) में पायी जाती है।

समष्टि वृद्धि जब संसाधन सीमित नहीं होते

समष्टि वृद्धि का निर्धारण उन कारकों को देखकर किया जा सकता है जिनके कारण उस समष्टि में व्यष्टियों की संख्या बढ़ने की प्रवृत्ति होती है, जैसे जन्म और अप्रवास तथा वे कारक जिनसे संख्या घटा करती है जैसे मृत्यु तथा प्रवास। सारणी 1.6 में आप उन कारकों का अनुमान लगा सकते हैं जिनसे समष्टि बढ़ती या घटती है। उदाहरण के लिए, सारणी को देखकर आप समझ जाएंगे कि स्पीशीज का उच्च जनन विभव उसकी समष्टि को बढ़ाता है तथा निम्न जनन समष्टि को घटाता है।

समष्टि वृद्धि सभी निर्दिष्ट कारकों के शुद्ध प्रभाव पर निर्भर होती है। और स्वयं ये कारक स्पीशीज की विशिष्टताओं तथा पर्यावरण दशाओं पर निर्भर होते हैं।

क्र.सं.	कारक	समष्टि में वृद्धि होना	समष्टि में कमी आना
1.	जनन विभव	उच्च	निम्न
2.	जनन कर सकने में सक्षम व्यष्टियों की संख्या	विशाल	कम
3.	भोजन	प्रचुर	अल्प
4.	आवास	स्थान उपलब्ध	स्थान उपलब्ध नहीं
5.	जलवायु	अनुकूल	प्रतिकूल
6.	आप्रवास	उच्च	निम्न
7.	विप्रवास	निम्न	उच्च
8.	रोग	निम्न	उच्च
9.	परभक्षण	निम्न	उच्च

कल्पना कीजिए कि आपने एक जीवाणु (बैक्टीरियम) लिया है और उसकी समस्त संतानों को बिना किसी रोक-टोक के बढ़ने-पनपने तथा जनन करने दिया है। एक महीने के भीतर यह जीवाणु निवह इतना बड़ा हो जाएगा जो सारे दृश्यमान ब्रह्माण्ड से भी बड़ा होगा। हर किसी समष्टि में इतना जनन विभव होता है कि यदि अनुकूलतम वृद्धि परिस्थितियां में उससे एक विस्फोटक जनसंख्या वृद्धि हो सकती है क्योंकि तब लगभग सभी परिपक्व व्यष्टि संतान उत्पन्न कर सकेंगे। जिन समष्टियों में प्राकृतिक वृद्धि की सकारात्मक दर पायी जाती है वह हर वर्ष बढ़ती ही जाती है। एक साल की प्रत्याशित वृद्धि (I) का परिकलन करने में प्राकृतिक वृद्धि दर (r) को वर्तमान समष्टि आकार (N) से गुणा किया जाता है।

$$I = rN$$

जिसमें $r = \frac{b-d}{N}$ N = व्यष्टियों की संख्या

b = जन्म दर

d = मृत्यु दर

इस सूत्र से पता चलता है समष्टि आकार चरघातांकी (exponential) होता है : जिसका अर्थ है कि अनुकूल परिस्थितियों में प्रत्येक वर्ष अधिक और उससे भी अधिक मात्रा में बढ़ता जाता है। समष्टि के आकार का ग्राफ खींचने पर जो परिणामी वृद्धि वक्र बनता है वह J-आकृति का होता है। इस प्रकार की चरघातांकी वृद्धि केवल असीमित संसाधनों वाली परिस्थिति में ही होती है। परंतु प्रयोगशाला परिस्थितियों के अतिरिक्त कहीं भी किसी समष्टि को अपनी वृद्धि के लिए असीमित संसाधन उपलब्ध होने की संभावना नहीं होती है। असीमित संसाधनों तथा आदर्श पर्यावरण परिस्थितियों में कोई स्पीशीज अधिकतम दर से संतान पैदा करेगी। इसे जैविक विभव (biotic potential) कहते हैं।

सीमित संसाधनों के रहते समष्टि वृद्धि

यदि भोजन तथा स्थान जैसे मूल्य संसाधन सीमित हैं तो ऐसे आवास में एक खास आकार से ज्यादा बड़ी समष्टि समाश्रयित नहीं हो सकती। यदि समष्टि एक सीमा से ज्यादा बड़ी हो गयी तो संसाधनों की सीमा समष्टि पर कई प्रकार से खराब असर डालती है जैसे कि मृत्यु दर में बढ़ोतरी तथा जन्म दर में कभी आना और समष्टि घनत्व घट करके उस सीमा पर पहुंच जाता है जो आवास के उपलब्ध संसाधनों द्वारा बनायी गयी होती है। समष्टि के व्यष्टियों की वह अधिकतम संख्या जिसे उसका पर्यावरण समाश्रित कर सकता एवं बनाए रख सकता है वहन क्षमता (K) (carry capacity) कहलाती है। वहन क्षमता एक संकल्पना है जिसका संबंध निर्वाहशीलता से है। इसे प्राय: इस प्रकार परिभाषित किया जाता है- वहन क्षमता किसी स्पीशीज की वह अधिकतम व्यष्टि-संख्या है जिसका किसी एक निर्दिष्ट क्षेत्र में निर्वाह हो सकता और वह वहां समाश्रित हो सकती है।

माना जाता है कि समष्टि का आकार पर्यावरण की धारक क्षमता पर आकर एक समान स्तरीय हो जाता है (चित्र 1.27)। वहन क्षमता पर पहुंच चुकने के बाद तब $N = K$ हो जाता है तथा r मान शून्य हो जाता है। इसे यूं भी कह सकते हैं कि तब जन्म दर मृत्यु के बराबर हो जाती है और समष्टि एक स्थिर अवस्था संतुलन बनाए रखनी चाहिए। परंतु जब कभी समष्टि का आकार बढ़ता जाता है तब उसमें स्थान और आहार के लिए प्रतिस्पर्धा और अधिक बढ़ जाती है जिसका समष्टि की वृद्धि पर असर होता है।

वे सभी कारक जो समष्टि की वृद्धि दर को कम करते हैं एक साथ मिलाकर पर्यावरण प्रतिरोध (environmental resistance) बनाते हैं। इसमें आने वाले कारक हैं-परभक्षण (predation), संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा, खाद्य अभाव, रोग, प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियां तथा अनुपयुक्त आवास। तो प्रश्न उठता है कि सीमाकारी कारकों के कारण J-आकृतिक वक्र का क्या होता है? आप देखेंगे कि यह एक S-आकृतिक यानी सिग्माभ वक्र में बदल जाता है

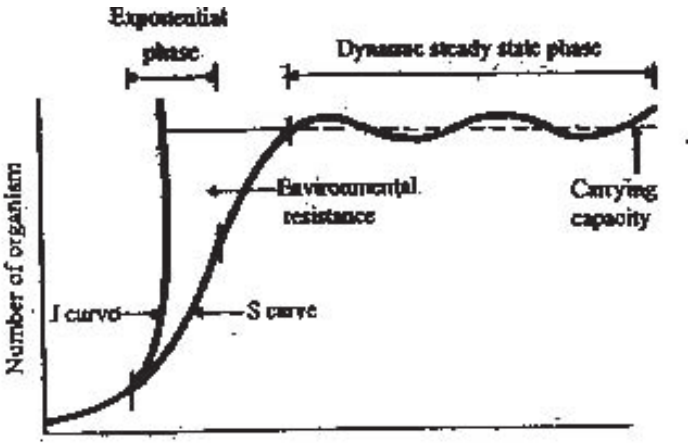

चित्र : J-आकृतिक वक्र S-आकृतिक वक्र में बदल गया है, और ऐसा तब होता है जब समष्टि को पर्यावरण प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है और किसी भी एक सीमाकारी कारक की अवसीमा (threshold) ऊपर पहुंच जाती है।

जब हम वहन क्षमता की बात कर रहे होते हैं तो उस पृथ्वी की वहन क्षमता की बात करना महत्वपूर्ण हो जाता है। मानव समष्टि के संदर्भ में वहन क्षमता अंशत: इस बात पर निर्भर करती है कि हम पर्यावरण को कितना महत्व देते हैं। अत: हमें स्वयं से प्रश्न करना है कि क्या एक ओर हम चाहेंगे कि हमारी भावी पीढ़ी भीड़-भड़ाके के परिवेश में छोटा जीवन जिएं जिसमें पृथ्वी के सौंदर्य एवं जीवन-विविधता के आनंद लेने का कोई अवसर न हो, या फिर क्या हम आशा करें कि हमारे वंशज एक उच्च गुणवत्ता वाला एवं अच्छे स्वास्थ्य के साथ जीवन किएं। एक बार जीवन की गुणवत्ता के लिए लक्ष्य चुन लेने के बाद हमारे लिए संभव होगा कि हम वैज्ञानिक सूचना का उपयोग कर सकेंगे यह जानने के लिए कि वहन क्षमता क्या होगी तथा हमें वह कैसे उपलब्ध हो सकती है।

अंतराजातीय संबंध (Interspecific relations)

अतराजातीय संबंधों में अधिक जटिल परस्परक्रियाएं आती हैं क्योंकि प्रत्येक परस्परक्रियाशील स्पीशीज को प्रभावित करने वाले पर्यावरण कारक अक्सर बहुत भिन्न होते हैं। यह संबंध प्रत्यक्ष एवं बहुत निकट का हो सकता है जैसे एक बाघ और हिरन के बीच, अथवा परोक्ष एवं दूर का हो सकता है जैसे एक हाथी तथा बीटल के बीच।

विभिन्न स्पीशीज के बीच कई प्रकार के अंतराजातीय संबंध होते पाए जाते हैं। हम इनमें से तीन मुख्य प्रकार के संबंधों को ले रहे हैं- सहजीवीय संबंध, प्रतिस्पर्धा तथा परभक्षण।

(I) सहजीवीय संबंध (Symbiotic relations)

कभी-कभार दो अलग-अलग प्रकार के जीवों में एक स्थायी संबंध बन जाता है जिसमें कम से कम एक जीव तो ऐसा होता है जिसे अपने जीवित बने रहने के लिए दूसरे पर निर्भर रहना होता है। इसे सहजीवीय संबंध अथवा सहजीवन (symbiosis) कहते हैं। सहजीवन भी अनेक प्रकार के होते हैं जिनमें से हम यहां केवल तीन ही प्रकार के लेंगे, ये हैं परजीविता, सहोपकारिता तथा सहभोजिता।

(i) **परजीविता (Parasitism) :** वह परस्परक्रिया है जिसमें एक स्पीशीज यानी परजीवी (parasite) लाभान्वित होता तथा दूसरी स्पीशीज यानी परपोषी (host) हानिग्रस्त होता है। परजीवी (जो आकार में छोटा होता है) के लिए उसका परपोषी आहार और आश्रय दोनों का स्रोत होता है। एक सुअनुकूलित परजीवी अपने परपोषी की जान नहीं लेता, यदि ऐसा हो तो उसका पोषण-स्रोत ही समाप्त हो जाएगा। परजीवियों की जनन दर प्राय: काफी ऊंची होती है तथा उसमें कहीं ज्यादा परपोषी-संविशिष्टता (host specificity) पायी जाती है। इनमें अक्सर संरचना, कार्यिकी तथा जीवन-इतिहास प्रतिरूप में बहुत विशिष्टता पायी जाती है।

(ii) **सहोपकारिता (Mutualism) :** एक ऐसा सहजीवीय संबंध है जिसमें दोनों भागीदार जीव लाभान्वित होते हैं। सहोपकारिता का एक बहुत अच्छा परिचित उदाहरण लाइकेन (Lichens) का है। लाइकेन में कवक और शैवाल एक दूसरे के साथ एक निकट साहचर्य बनाते हुए रहते हैं। कवक जल धारण किए रह सकते हैं मगर क्लोरोफिल न होने के कारण वे अपना भोजन नहीं बना सकते जबकि शैवाल जल नहीं धारण किए रह सकते लेकिन जल उपलब्ध होने पर अपना भोजन बना सकते हैं। इस प्रकार एक साथ रहकर ये दोनों जीवन अपने कार्यों को जोड़ देते और दोनों को जल तथा भोजन मिल जाता है। प्रकृति में पौधों और प्राणियों के बीच सहोपकारिता के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

(iii) **सहभोजिता (Commensalism) :** वह सहजीवी संबंध है जिसमें एक जीव लाभान्वित होता तथा दूसरा अप्रभावित रहता है। इसका एक उदाहरण है रेमोरा मछली तथा शार्क। रेमोरा एक छोटी सी मछली है जो शार्क की निचली सतह पर उससे चिपकी रहती है जहां से वह शार्क के भोजन से बचा-खुचा कचरा लाती है और मुफ्त की सवारी। रेमोरा की मौजूदगी से शार्क को लाभ नहीं पहुंचता और न ही शार्क को कोई हानि पहुंचती है।

(II) प्रतिस्पर्धा (Competition)

प्रतिस्पर्धा प्रकृति में प्राय: तब होता है जब आहार, आश्रय स्थान, संगमी आदि सीमित हों, परंतु, हमेशा ही ऐसा हो यह जरूरी नहीं। संसाधन की सीमितता जिससे प्रतिस्पर्धा पैदा होती है यह डार्विन के जीवन के लिए संघर्ष तथा योग्यतम की उत्तरजीविता की विचारधारा में निहित है। प्रश्न उठता है कि जब दो संबंधी स्पीशीज में एक ही संसाधन के लिए प्रतिस्पर्धा होती है तब क्या होता है? परिणाम क्या निकलेगा यह प्राय: इस बात पर निर्भर होता है कि ये स्पीशीज कितनी ''प्रतिस्पर्धी'' हैं। यदि प्रतिस्पर्धा में एक स्पीशीज श्रेष्ठतर है तो उसके कारण दूसरी स्पीशीज उस आवास से बाहर हो जाएगी, और इस परिघटना को ''गौस (Gause) का प्रतिस्पर्धा बाह्यकरण का सिद्धांत'' कहा जाता है, और इसका यह नाम रूसी वैज्ञानिक जी.एफ. गौस (G.F. Gause) के नाम पर दिया गया है। यदि दोनों स्पीशीज शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी रहे तब जो परिणाम निकलेगा वह आरम्भिक दशाओं पर निर्भर होगा, एक अनिश्चित एवं अस्थिर सहअस्तित्व संभव है। परंतु यदि दोनों स्पीशीज दुर्बल प्रतियोगी स्पीशीज रही तो दोनों उसी एक आवास में अनिश्चित काल तथा शांतिपूर्ण रूप में अनिश्चित काल तक साथ-साथ रह सकती हैं।

गौस का प्रतिस्पर्धा बाह्य निष्कासन सिद्धांत कहता है कि सर्वसमान आवश्यकताओं वाली दो स्पीशीज हमेशा के लिए एक ही ''निकेत'' (niche) के भीतर नहीं रह सकतीं। तो किसी स्पीशीज के निकेत से क्या अभिप्राय है? निकेत का अर्थ है पारितंत्र में किसी स्पीशीज की क्रियात्मक भूमिका अथवा उसका कार्य करने का स्थान है। यह उन तमाम जैविकीय, भौतिक तथा रासायनिक कारकों का वृत्तांत है जो किसी स्पीशीज को जीवित बने रहने, स्वस्थ रहने तथा जनन करने के लिए चाहिए। किसी भी स्पीशीज का निकेत सबसे पृथक होता है, जिसका अर्थ है कि किन्हीं दो स्पीशीज के निकेत ठीक एकसमान नहीं हो सकते। जीवधारियों के संरक्षण में निकेतों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि हमें किसी स्पीशीज को उसके मूल आवास के भीतर संरक्षित करना है तो हमें उस स्पीशीज के निकेत की आवश्यकताओं के विषय में जानकारी होनी चाहिए और हमें सुनिश्चित करना होगा कि उसके निकेत की सभी आवश्यकताएं पूरी हो जाएं।

(III) परभक्षण (Predation)

इस परस्परक्रिया में एक जीव जो परभक्षी कहा जाता है, एक अन्य जीव जिसे शिकार कहेंगे, को मारकर उसे खाता है। यह प्रक्रिया न केवल प्राकृतिक पारितंत्रों में ही अति विशाल महत्व की है वरन् स्वयं मानव के लिए भी अति महत्वपूर्ण है क्योंकि या तो वह स्वयं ही प्रत्यक्ष रूप में परभक्षी होता है या उसे ऐसे प्राकृतिक परभक्षियों से जूझना होता है जो उसे प्रत्यक्ष हानि पहुंचाते हैं या जो ऐसा शिकार मारते हैं जो मानव के लिए लाभकारी होता है।

भारत का जैव-भौगोलिक वर्गीकरण (Biogeographic classification of India)

भूगोल, जलवायु, वनस्पतियों के प्रतिमान तथा स्तनपायी प्राणियों, पक्षियों, सरीसृपों, जलथलचरों, कीड़े-मकोड़ों और दूसरे अकशेरुकी प्राणियों के समुदायों के आधार पर हमारे देश को आसानी से दस प्रमुख क्षेत्रों में बांटा जा सकता है। इनमें से हर क्षेत्र में वन, घास के मैदान, झीलें, नदियां, नमभूमि, पहाड़ और पहाड़ियों जैसे अनेक प्रकार के पारितंत्र हैं और उनमें पौधों और प्राणियों की अलग-अलग प्रजातियां हैं।

1. ठंडा, बर्फ से ढंका, लद्दाख का हिमालयी क्षेत्र।
2. हिमालय की पर्वतमालाएं तथा कश्मीर, हिमाचलप्रदेश, उत्तराखण्ड, असम और दूसरे पूर्वोत्तर राज्यों की वादियां।
3. तराई की निम्नभूमि (lowland) जहां हिमालय से निकली नदियां मैदानों में प्रवेश करती हैं।
4. गंगा और ब्रह्मपुत्र के मैदान।
5. राजस्थान का थार रेगिस्तान।
6. दकन के पठार, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु के अर्धशुष्क घास के मैदान।
7. भारत के पूर्वोत्तर राज्य
8. महाराष्ट्र, कर्नाटक और केरल का पश्चिमी घाट।
9. अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह।
10. पश्चिम और पूर्व की लंबी समुद्रतटीय पट्टियां जिनमें रेतीले तट, वन और मैनग्रोव हैं।

जैव-विविधता का मूल्य (Value of biodiversity)

अपनी प्रजातियों और पारितंत्रों के कारण जैव-विविधता से अनेक प्रकार के पर्यावरण संबंधी लाभ होते हैं जो अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर महत्त्वपूर्ण हैं। आक्सीजन का उत्पादन, कार्बन डाइआक्साइड में कमी, जल-चक्र की निरंतरता और मिट्टी की सुरक्षा ऐसे कुछ महत्त्वपूर्ण लाभ हैं। आज दुनिया इस बात को मानती है कि जैव-विविधता की हानि जलवायु में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन ला रही है। वन कार्बन डाइआक्साइड को कार्बन और आक्सीजन में बदलने के प्रमुख साधन हैं। वनों के आवरण का विनाश और साथ में औद्योगीकरण के कारण कार्बन डाइआक्साइड और अन्य गैसों का बढ़ता उत्पादन 'हरितगृह प्रभाव' में वृद्धि कर रहा है। विश्वव्यापी उष्णता बर्फीले शिखरों को गला रही है जिससे समुद्रों का जलस्तर बढ़ रहा है और इसके कारण दुनिया के नीची सतहों वाले क्षेत्र आखिरकार डूब जाएंगे। इससे वातावरण में भी भारी परिवर्तन आ रहे हैं और तापमान बढ़ रहा है, कुछ क्षेत्रों में भयंकर सूखे पड़ रहे हैं तो कुछ अन्य क्षेत्रों में अप्रत्याशित बाढ़ें आ रही हैं।

जैव-विविधता पारितंत्रीय प्रक्रियाओं के लिए भी अनिवार्य है: पोषक तत्त्वों का पुनर्चालन, मृदा का निर्माण, जल और वायु का परिचालन और उनकी सफाई, विश्वस्तर पर जीवन के आधार (पौधे CO_2 लेकर O_2 छोड़ते हैं) को बनाए रखना, पारितंत्रों के अंदर जल के संतुलन की निरंतरता को बनाए रखना, जलविभाजक (watershed) संरक्षण, वर्षभर नदियों और नालों में प्रवाह की निरंतरता, अपरदन पर नियंत्रण और स्थानीय बाढ़ों में कमी।

भोजन, वस्त्र, आवास, ऊर्जा, दवाएं–ये सभी ऐसे संसाधन हैं जिनका जैवमंडल की जैव-विविधता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध है। यह बात जनजातीय समुदायों के सिलसिले में सबसे स्पष्ट है जो वनों से सीधे संसाधन पाते हैं या मछुआरों के लिए भी जो समुद्री

या ताजे जल के पारितंत्रों में मछलियां पकड़ते हैं। कृषक जैसे दूसरे समुदायों के मामले में जैव-विविधता का उपयोग पर्यावरण के अनुकूल फसलें उगाने के लिए किया जाता है। आम तौर पर नगरीय समुदाय ऐसी वस्तुओं और सेवाओं का सबसे अधिक उपयोग करता है जो प्राकृतिक पारितंत्रों से अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होती हैं।

आज यह बात स्पष्ट है कि मानवजाति के कल्याण और जीवनरक्षा के लिए जैविक संसाधनों का संरक्षण अनिवार्य है। निर्जन स्थानों पर तथा हमारी फसलों और पशुधन में मौजूद जीवित कायाओं की यह विविधता मानव के 'विकास' में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए जैव-विविधता का संरक्षण ऐसी किसी भी रणनीति का अभिन्न अंग है जिसका उद्देश्य मानव जीवन के स्तर को ऊंचा उठाना है।

उपभोग मूल्य (Consumptive use value)

स्थानीय समुदायों द्वारा इमारती और जलावन लकड़ी, खाद्य पदार्थों और चारे का सीधे-सीधे उपयोग उपभोग मूल्य का एक स्पष्ट उदाहरण है।

पारितंत्र में मौजूद जैव-विविधता वनवासियों की तमाम दैनिक आवश्यकताएं पूरी करती है, जैसे भोजन, निर्माण सामग्री, चारा, दवाएं तथा अनेक दूसरी वस्तुओं की आवश्यकताएं। वे विभिन्न प्रजातियों के पेड़ों की लकड़ी के गुण-दोष और भिन्न-भिन्न उपयोग जानते हैं तथा भारी मात्रा में स्थानीय फल, कंदमूल और वानस्पतिक सामग्री जमा करते हैं जिनका उपयोग वे भोजन, निर्माण सामग्री या दवाओं के रूप में करते हैं। मछुआरे पूरी तरह मछलियों पर निर्भर होते हैं तथा यह जानते हैं कि मछलियों, दूसरे खाने योग्य जलीय प्राणियों और वनस्पतियों की प्राप्ति कहां और कैसे होगी।

उत्पादक मूल्य (Productive use value)

इस श्रेणी में बिकने योग्य वस्तुएं आती हैं।

वनों की छोटी-छोटी पैदावारों का मूल्य/इमारती लकड़ी का मूल्य (जो निर्वहनीय उपयोग का हिस्सा है)।

जैव-प्रौद्योगिकी का विशेषज्ञ पौधों या प्राणियों में उन संभावित जनन संबंधी गुणों का पता लगाने के लिए 'जैव समृद्ध' क्षेत्रों का उपयोग करता है जिनके इस्तेमाल से खेती और बागबानी के लिए पौधों की बेहतर किस्मों की और पशुधन का विकास किया जा सकता है। किसी फार्मासिस्ट (pharmacist) के लिए जैव-विविधता वह कच्चा माल है जिसके आधार पर पौधों या प्राणियों से प्राप्त वस्तुओं से नई दवाओं की पहचान की जा सकती है। उद्योगपतियों के लिए जैव-विविधता एक भारी भंडार है जिससे नए माल बनाए जा सकते हैं। कृषि-वैज्ञानिकों के लिए पौधों के जंगली संबंधियों की जैव-विविधता बेहतर फसलों के विकास का आधार है।

जैव-विविधता वैज्ञानिकों और कृषकों को अवसर प्रदान करती है कि वे सावधनीपूर्वक प्रजनन के कार्यक्रम चलाकर चुनिंदा तौर पर बेहतर फसलों और मवेशियों का विकास कर सकें। पहले यह काम एक अधिक उत्पादक या रोगरोधक किस्म को पाने के लिए फसलों को चुनकर या कृत्रिम सेंचन कराकर किया जाता था। आज अधिकांश रूप से यही काम जैव-प्रौद्योगिकी (biotechnology) से किया जाने लगा है—एक पौधे के जीन चुनकर और उन्हें दूसरे पौधे में डालकर। जैव-प्रौद्योगिकी के द्वारा फसलों के वन्य संबंधियों में प्राप्त जैविक सामग्री से फसलों की नई किस्मों का विकास किया जा रहा है।

आम तौर पर प्रयुक्त आधुनिक दवाएं जो पौधों से प्राप्त होती हैं:

दवा	पौधा	उपयोग
एट्रोपीन	धतूरा (Belladona)	एंटिकोलिनर्जिक; दस्त में आंतों का दर्द कम करता है
ब्रोमीलेन	अन्नानास	संक्रमण की अवस्था में ऊत्तकों की जलन को नियंत्रित करता है
कैफीन	चाय, कहवा	केंद्रीय स्नायुतंत्र को प्रदीप्त करता है
काफूर	काफूर का पेड़ (Camphor tree)	रूबीफेसिएंट; रक्त की स्थानीय आपूर्ति बढ़ाता है
कोकीन	कोकुआ (Cocoa)	एनलजेसिक और लोकल अनेसथेटिक; दर्द कम करता और शल्यक्रिया के दौरान दर्द को रोकता है
कोडीन	अफीम का पोस्ता	एनलजेसिक; दर्द कम करता है
मार्फीन	अफीम का पोस्ता	एनलजेसिक; दर्द को नियंत्रित करता है
कोल्चीसीन	जंगली केसर	कैंसररोधी दवा
डिजिटाक्सीन	आम फाक्सग्लव	हृदय के रोगों में हृदय-गति कराती है
डायसजेनीन	जंगली रतालू	स्त्री के लिए गर्भ-निरोधक
एल-डोपा	वेल्वेट बीन	पार्किसंस रोग को, जो हाथों में कंपन लाता है, नियंत्रित करता है
अर्गोटेमीन	राई की काजल या अर्गट	रक्तस्त्राव और अधकपारी दर्द (माइग्रेन) रोकता है
ग्लेजियोबीन	ओकोटिया ग्लैजियोबी	विषादरोधक (antidepressant)
गोसीपोल	कपास	पुरुष के लिए प्रजननरोधक
एंडीसीन एन-आक्साइड	हीलियोट्रापियम इंडिकम	कैंसररोधक
मेंथाल	पुदीना	रूबीफेसिएंट, रक्त की स्थानीय आपूर्ति बढ़ाता है और स्थानीय उपयोग के बाद दर्द कम करता है
मोनोक्रोटेलीन	कोटोलेरिया सेसिलिफ्लोरा	कैंसररोधक
पपाइन	पपीता	पाचन क्रिया के दौरान अतिरिक्त प्रोटीन और श्लेष्मा (mucus) को कम करता है
पेनिसिलीन	पेनिसिलियम फंगी	जैवमारक (antibiotic)
क्वीनीन (कुनैन)	पीला चिंचोना	मलेरियामारक
रेसरथीन	भारतीय सांपबूटी	उच्च रक्तचाप में कमी लाती है
स्कोपोलेमीन	थार्न एपिल	उपशामक औषधि (sedative)
टैक्सोल	पैसिफिक यू	डिंबग्रंथि (ovarian) के कैंसर की दवा
विजब्लैस्टाइन,	रोजीपेरिविंकिल	कैंसररोधक, बच्चों में कैंसर को नियंत्रित करता है।
विनक्रिस्टीन	(विंकारोजिया) (सदाफली)	

सामाजिक मूल्य (Social values)

परंपरागत समाजों में आबादी कम थी और उन्हें संसाधनों की आवश्यकता भी कम पड़ती थी। इसलिए उन्होंने जीवनवाही संसाधन के रूप में अपनी जैव-विविधता को बचाकर रखा। लेकिन आधुनिक मानव ने जैव-विविधता को नष्ट करते हुए उसे इतना कम कर दिया है कि अनेक प्रजातियों के विनाश के रूप में अपूरणीय क्षति हुई है। इसलिए जैव-विविधता के उत्पादों के स्थानीय उपयोग या विक्रय के अतिरिक्त एक सामाजिक पक्ष भी है जिसमें संपन्न समाज अधिकाधिक संसाधनों का उपयोग कर रहा है। हमारी जैव-विविधता को एक बड़ी हद तक उन परंपरागत समाजों ने बचा कर रखा है जो उसका संसाधन रूप में मूल्य समझते थे और महसूस करते थे कि उसकी कमी से उनको भारी हानि होगी। यह एक ऐसा सबक है जिसे हम सब सीखें तो बुद्धिमानी होगी।

परंपरागत समुदायों में जैव-विविधता का उपयोग और उसके उत्पादक मूल्यों का गहरा संबंध उनके सामाजिक दृष्टिकोण से है। 'पारितंत्रिक जनता' (Ecosystem people) जैव-विविधता को अपनी जीविका के अंगरूप में तथा सांस्कृतिक और धार्मिक भावनाओं के कारण भी महत्त्व देती है। परंपरागत कृषि प्रणालियों में पौधों की भारी विविधता उगाई जाती है जिसके कारण अनेक प्रकार की फसलें पैदा होती रही हैं और साल भर बाजार में आती रही हैं। यह एक फसल (आज की 'mono culture') की नाकामी की दशा में खाद्य सुरक्षा प्रदान करती रही है। हाल के वर्षों में किसानों को स्थानीय आवश्यकताओं के बदले राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के लिए नकदी फसलें पैदा करने के लिए प्रोत्साहन दिए जाने लगे हैं। इससे स्थानीय स्तर पर खाद्यान्न की कमी हो रही है, बेरोजगारी पैदा हो रही है (नकदी फसलें आम तौर पर यंत्रों पर निर्भर करती हैं), भूमिहीनता बढ़ रही है और सूखे या बाढ़ के खतरे भी बढ़ रहे हैं।

नैतिक मूल्य (Ethical and moral values)

जैव-विविधता के संरक्षण से संबंधित नैतिक मूल्यों का आधार है सभी जीवनरूपों के संरक्षण को महत्त्व देना। अधिकांश धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष विश्वासों के अनुसार पृथ्वी पर सभी जीवनरूपों को अस्तित्व का अधिकार है। मानव पृथ्वी के विशाल प्रजाति-वंश का मात्र एक छोटा-सा अंग है; पौधों और पशुओं को भी हमारी पृथ्वी पर रहने और जीने का अधिकार है। हमें नहीं पता कि क्या किसी और ग्रह पर वैसा जीवन है जैसा हमारी पृथ्वी पर है? क्या हमें जीवनरूपों को नष्ट करने का अधिकार है? या उनकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है?

जैव-विविधता के संरक्षण के आर्थिक महत्त्व के अलावा सभी जीवनरूपों की पवित्रता से अनेक सांस्कृतिक और नैतिक मूल्य भी जुड़े हुए हैं। भारतीय सभ्यता स्थानीय परंपराओं के माध्यम से अनेक सदियों से प्रकृति का संरक्षण करती आई है। प्रकृति का संरक्षण प्राचीन दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारे देश के अनेक राज्यों में अनेक पवित्र बाग या 'देवराई' हैं जिनको जनजातीय लोगों ने बचाकर रखा है। प्राचीन तीर्थों और मंदिरों के पास स्थित पवित्र बाग वन्य पौधों के लिए जीन बैंक का काम करते हैं।

सौंदर्यात्मक मूल्य (Aesthetic value)

जैव-विविधता का अंतर्निहित मूल्य, उसका सौंदर्य और हमारे ज्ञान-वृद्धि में उसका योगदान उसे सुरक्षित रखने के अन्य कारण हैं। भोजन के लिए वन्य प्राणियों के शिकार से एकदम अलग पर्यटन के आकर्षण के रूप में भी उसका महत्त्व है। जैव-विविधता प्रकृति का सुंदर और अद्‌भुत पक्ष है। जंगल में बैठकर पक्षियों को चहचहाते तो सुनिए। मकड़ी को एक पेचीदा जाल बुनते तो देखिए। मछली को कुछ निगलते देखिए। यह सब कितना सुंदर और मनमोहक है!

विशेषकर भारत में हमारी संस्कृति और इतिहास में पौधों और प्राणियों के बिंब भरे पड़े हैं। वन्य प्रजातियों के प्रतीकों की, जैसे हिंदू धर्म के सिंह, बौद्ध धर्म के हाथी, भगवान गणेश जैसे देवताओं तथा अनेक देवी-देवताओं के वाहक पशुओं की हजारों वर्षों से पूजा की जाती रही है। ऋषि बाल्मीकि ने एक शिकारी द्वारा एक क्रोंच पक्षी के शिकार के बाद एक श्लोक कहकर अपने महाकार्य का आरंभ किया था। पवित्र तुलसी (Basil) को सदियों से हर घर के आंगन में उगाया जाता रहा है।

विकल्पी मूल्य (Option value)

भविष्य में उपयोग के लिए संभावनाओं को खुला रखना विकल्पी मूल्य कहलाता है। यह कह सकना मुश्किल है कि भविष्य में कौन-कौन सी प्रजातियां या पौधों मवेशियों की कौन-कौन सी परंपरागत किस्में हमारे लिए सबसे अधिक उपयोगी होंगी। फसलों और पशुधन में सुधार जारी रखने के लिए हमें पौधों और पशुओं के वन्य संबंधियों की ओर लौटना होगा। इस तरह जैव-विविधता के संरक्षण में पौधों और मवेशियों की पहले से मौजूद परंपरागत किस्में भी शामिल होनी चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तरों पर जैव-विविधता

(Biodiversity at global, national and local levels)

इस समय लगभग 18 लाख प्रजातियां दुनिया के वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञात और प्रलेखित हैं। फिर भी वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी पर पौधों और पशुओं की प्रजातियों की संख्या डेढ़ से दो अरब तक हो सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि अधिकांश प्रजातियों की खोज होनी अभी बाकी है।

दुनिया के अधिकांश जैव-समृद्ध राष्ट्र 'दक्षिण' में है, अर्थात वे 'विकासशील' राष्ट्र हैं। इसके विपरीत, जैव-विविधता के शोषण में समर्थ अधिकांश देश उत्तर के हैं। आर्थिक रूप से 'विकसित' जगत को अब महसूस हो रहा है कि जैव-विविधता को 'अंतर्राष्ट्रीय संसाधन' माना जाना चाहिए। लेकिन अगर जैव-विविधता ऐसी 'साझी संपत्ति' है जिसमें सभी देश भागीदार हैं तो अंतर्राष्ट्रीय संपदा में तेल या यूरेनियम को, बल्कि बौद्धिक या प्रौद्योगिक विशेषज्ञता को भी न शामिल करने का कोई कारण नहीं है। सभी प्रकार से प्राकृतिक संसाधनों में भागीदारी को लेकर दुनिया की सोच में क्रांतिकारी परिर्वतन अगर नहीं आता तो अपनी जैव-विविधता पर भारत की प्रभुसत्ता को बलिदान नहीं किया जा सकता।

भारत से अधिक आर्थिक जैव-विविधता वाले कुछ देश दक्षिण अमरीका में हैं, जैसे ब्राजील या दक्षिण-पूर्व एशिया के देश हैं, जैसे मलेशिया और इंडोनेशिया। पर इन देशों में मौजूद प्रजातियां हमारे यहां से भिन्न हैं। इसके कारण एक प्रमुख आर्थिक संसाधन के रूप में अपनी जैव-विविधता का संरक्षण हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है। जहां भारी विविधता वाले दूसरे राष्ट्र जैव-प्रौद्योगिकी और जननिक अभियांत्रिकी के लिए अपनी प्रजातियों के उपयोग की प्रौद्योगिकी विकसित नहीं कर पाए हैं, वहीं भारत ऐसा करने में समर्थ है।

पूरी दुनिया में जैव-समृद्ध प्राकृतिक क्षेत्रों को आज महत्त्व दिया जा रहा है, क्योंकि यह बात स्पष्ट हो गई है कि वे अमूल्य हैं। विश्व धरोहर संविदा (World Heritage Convention) जैसे अंतर्राष्ट्रीय समझौतों ने ऐसे क्षेत्रों के संरक्षण के प्रयास किए हैं। भारत इस संविदा पर हस्ताक्षर कर चुका है और अपने अनेक संरक्षित क्षेत्रों को उसने विश्व धरोहर स्थलों में शामिल कर लिया है। **भूटान-भारत सीमा पर मानस, असम में काजीरंगा, राजस्थान में भरतपुर, हिमालय में नंदादेवी और पश्चिम बंगाल में गंगा के डेल्टा में स्थित सुंदरवन इन स्थलों में शामिल हैं।**

भारत ने संकटग्रस्त प्रजाति व्यापार संविदा (Convention in the Trade of Endangered Species-CITES) पर भी हस्ताक्षर किए हैं। इसका उद्देश्य संकटग्रस्त पौधों और पशुओं का उपयोग कम करने के लिए उनके उत्पादों के व्यापार पर और पालतू पशुओं के व्यापार पर अंकुश लगाना है।

विराट विविधता वाले राष्ट्र के रूप में भारत (India as a mega-diversity nation)

भारत की धरती के अंदर की घटनाओं ने यहां उच्चस्तरीय जैव-विविधता की परिस्थितियां पैदा की हैं। लगभग 7 करोड़ साल पहले एक ही विराट महाद्वीप के टूटने से उत्तर और दक्षिण के महाद्वीपों का निर्माण हुआ जिसमें भारत गोंडवानालैंड का भाग था और यह भाग अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिका के साथ दक्षिणी भूखंड का हिस्सा था। भूखंडों की बाद की गतियों के कारण भारत विषुवत रेखा (equator) से उत्तर की ओर खिसककर उत्तर के यूरेशियाई महाद्वीप में मिल गया। बीच में स्थित टेथिस सागर जब सूखा तो जिन पौधों और पशुओं का विकास यूरोप और सुदूर पूर्व, दोनों क्षेत्रों में हुआ था वे हिमालय के बनने से पहले ही भारत में आ पहुंचे। आखिरी झुंड इथियोपियाई प्रजातियों के साथ अफ्रीका से आए जो सवाना और अर्धशुष्क क्षेत्रों में रहने के अभ्यस्त थे। इस तरह जैविक विकास के तीन प्रमुख केंद्रों के बीच में भारत की स्थिति और प्रजातियों का फैलाव हमारी समृद्ध और भारी जैव-विविधता का कारण है।

जैव-समृद्ध राष्ट्रों में भारत पहले 10 या 15 देशों में आता है और यहां पौधों और पशुओं की भारी विविधता है जिनमें से अनेक कहीं और पाए नहीं जाते। भारत में 350 स्तनपायी हैं (यह दुनिया में आठवीं बड़ी संख्या है), पक्षियों की 1200 प्रजातियां हैं (संसार में आठवां स्थान), सरीसृपों की 453 प्रजातियां हैं (संसार में पांचवां स्थान) और पौधों की 45,000 प्रजातियां हैं (संसार में पंद्रहवां स्थान) जिनमें से अधिकांश तो आवृत्तबीजी (angiosperms) हैं। इनमें 1022 प्रजातियों वाले फर्न और 1,082 प्रजातियों वाले आर्किड की विशेष रूप से भारी विविधता भी शामिल है। 13,000 तितलियों और गुबरैलों (moths) समेत यहां कीड़े-मकोड़ों की 50,000 ज्ञात प्रजातियां हैं। अनुमान लगाया गया है कि अज्ञात प्रजातियों की संख्या इससे कहीं बहुत अधिक हो सकती है।

अनुमान है कि भारत के 18 प्रतिशत पौधे स्थानिक हैं और दुनिया में कहीं और पाए नहीं जाते। पौधों की प्रजातियों में फूल देनेवाले काफी हद तक स्थानीय पौधे हैं; इनमें से एक-तिहाई तो दुनिया में कहीं और पाए ही नहीं जाते। भारत के जलथलचारी प्राणियों में 62 प्रतिशत इसी देश में पाए जाते हैं। छिपकलियों की 153 ज्ञात प्रजातियों में 50 प्रतिशत यहां की हैं। कीड़ों-मकोड़ों, समुद्री केंचुओं, गोंजरों, मेफ्लाई और ताजे जल के स्पंज के विभिन्न समूहों में भी भारी स्थानीयता देखी गई है।

	दुलिन में भारत का स्थान	भारत में प्रजातियों की संख्या
स्तनपायी	आठवां	350
पक्षी	आठवां	1200
सरीसृप	पांचवां	453
जलथलचारी	पंद्रहवां	182
आवृत्तबीजी (Angiosperm)	पंद्रहवां-बीसवां	14,500

भारत में जंगली पौधों और प्राणियों की भारी जैव-विविधता के अलावा यहां फसली पौधों (cultivated crops) और पालतू पशुओं की भी भारी विविधता है। यह उन कई हजार वर्षों का परिणाम है जिसके दौरान भारतीय उपमहाद्वीप में सभ्यताओं का जन्म और विकास हुआ। यहां कृषि के परंपरागत फसलों में धान, अनेक दूसरे अनाज, सब्जियां और फलों की 30,000 से 50,000 प्रजातियां हैं। इन पौधों की सबसे अधिक विविधता पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट, उत्तरी हिमालय और पूर्वोत्तर की पहाड़ियों के भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में हैं।

जीन बैंकों में भारत में उगनेवाले 34,000 से अधिक अनाज और 22,000 दालें जमा हैं। भारत में मवेशियों की 27, भेड़ों की 40, बकरियों की 22 और भैंसों की 8 देशी किस्में हैं। तमाम 'विदेशी' वस्तुओं को चूंकि हम अंधे होकर स्वीकार करते जा रहे हैं, इसलिए इनमें से अनेक नस्लें या तो मर चुकी हैं या मर रही हैं-जर्सी और होलस्टाइन बड़ी हद तक देसी ब्रह्मा बैल को विस्थापित कर चुके हैं; भारी उपज वाले पौधों ने सदियों पुरानी देसी फसलों की जगह ले ली है, नकदी फसलों ने खाद्यान्नों को विस्थापित किया है, यूकेलिप्टस और आस्ट्रेलियाई बबूल ने मिले-जुले शोल वनों को विस्थापित किया है। भारत की भूमि आज धीरे-धीरे अपनी अलग पहचान खो रही है और दुनिया के किसी भी अन्य परिदृश्य की तरह होती जा रही है।

जैव-विविधता के मुख्यस्थल (Hotspots of biodiversity)

पृथ्वी की जैव-विविधता अनेक पारितंत्री क्षेत्रों में विभाजित है। **दुनिया में 1000 से अधिक प्रमुख 'पारिक्षेत्र' (ecoregions) हैं। इनमें से तो 200 सबसे समृद्ध, सबसे दुर्लभ और सबसे विशिष्ट प्राकृतिक क्षेत्र कहे जाते हैं। इन क्षेत्रों को 'ग्लोबल 200' कहा जाता है।**

अनुमान लगाया गया है कि 50,000 स्थानिक पौधों में, जो विश्वभर के पौधों का 20 प्रतिशत है, संभवतः सिर्फ 18 प्रमुख स्थलों में पाए जाते हैं। जिन देशों में जैव-विविधता के ऐसे प्रमुख स्थलों का भाग अपेक्षाकृत अधिक है उनको 'भारी विविधता वाले देश' कहा जाता है।

हमारे पूरे देश में प्रजातियों का विनाश किस दर से हो रहा है, यह अस्पष्ट है। यह दर हो सकती है बहुत अधिक हो क्योंकि हमारे निर्जन क्षेत्र तेजी से सिकुड़ रहे हैं। विश्वस्तर पर मान्यता प्राप्त हमारे प्रमुख स्थल पूर्वोत्तर और पश्चिमी घाट के वनों में हैं जिनको संसार के सबसे जैव-समृद्ध क्षेत्रों में शामिल किया गया है। अंडमान-निकोबार अत्यंत प्रजाति समृद्ध द्वीपसमूह है तथा यहां विभिन्न पशु-पक्षियों की अनेक उप-प्रजातियों का विकास हुआ है। स्थानीय अर्थात केवल भारत में मिलने वाली प्रजातियों की एक बड़ी संख्या इन्हीं तीन क्षेत्रों में केंद्रित है।

भारत के समुद्रों को लें तो प्रवाल भित्तियां (coral reefs) अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह, लक्षद्वीप द्वीपसमूह तथा गुजरात और तमिलनाडु के खाड़ी क्षेत्रों को घेरे हुए हैं। इनमें उष्णकटिबंधीय वनों जितनी ही प्रजातियों की विविधता मिलती है।

जैव-विविधता का संकट: आवास क्षति, वन्य प्राणियों का शिकार, मानव-वन्यजीवन टकराव

(Threats to biodiversity: Habitat loss, poaching of wildlife, man-wildlife conflicts)

मानव अब इनमें से अधिकांश प्राकृतिक पारितंत्रों का अति-उपयोग करने लगा है। संसाधनों के इस अनिर्वहनीय उपयोग के कारण जो भूखंड कभी उत्पादक वन और घास के मैदान थे, अब रेगिस्तान बन चुके हैं और बंजर सारी दुनिया में फैल चुका है। जलावन लकड़ी और झींगापालन के लिए मैनग्रोव काटे गए हैं जिसके कारण समुद्री मछलियों के प्रजनन के लिए आवासों में कमी आई है। खेती की जमीन बढ़ाने के लिए नमभूमियों को सुखाया गया है। आगे चलकर इन परिवर्तनों के गंभीर आर्थिक परिणाम होंगे।

निर्जन आवासों के बाकी बचे बड़े क्षेत्रों का इन दिनों विनाश जारी है, खासकर अद्‌भुत विविधता वाले उष्णकटिबंधीय वनों और प्रवाल भित्तियों के क्षेत्रों में। यह संसार भर में जैव-विविधता के लिए सबसे बड़ा जोखिम है। **वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मानव के कार्यकलाप 2050 तक लगभग एक करोड़ प्रजातियों को नष्ट कर सकते हैं।**

जैसा कि कहा गया, आज दुनिया में विज्ञान को पौधों और प्राणियों की लगभग 18 लाख प्रजातियों का ज्ञान है। लेकिन प्रजातियों की संख्या इससे कम से कम दस गुनी हो सकती है। अज्ञात पौधों और कीड़ों-मकोड़ों की तथा दूसरे जीवनरूपों की पहचान दुनिया में विविधता के प्रमुख स्थलों में की जा रही है। दुर्भाग्य से विनाश की दर यही रही तो दुनिया की लगभग 25 प्रतिशत प्रजातियां खासी तेजी से समाप्त हो जाएंगी। यह सब प्रतिवर्ष 10-20 हजार प्रजातियों की दर से हो सकता है जो संभावित प्राकृतिक दर से 1000-10,000 गुना अधिक है। मानव के कार्यकलाप अगले 25-30 वर्षों में दुनिया की 25 प्रतिशत प्रजातियों को खत्म कर सकते हैं। इस महाविनाश का काफी कुछ संबंध जनसंख्या की वृद्धि, औद्योगीकरण और भूमि के उपयोग में परिवर्तन से है। इस विनाश का एक बड़ा भाग निश्चित ही उष्णकटिबंधीय वनों, नमभूमियों और प्रवाल-भित्तियों जैसे जैव-समृद्ध क्षेत्रों में होगा। तेजी से बढ़ती जनसंख्या और अल्पकालिक आर्थिक विकास के कारण निर्जन आवासों का विनाश दुनियाभर में जैव-विविधता के तीव्र विनाश को बढ़ा रहा है।

द्वीपों के प्राणी और पौधे, जो सभी ओर से समुद्र से घिरे छोटे-छोटे अलग-अलग क्षेत्रों में स्थानीय होते हैं, अभी तक मानव के कार्यकलाप से सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं। इसके कारण अनेक द्वीपवासी पौधों और पशुओं का पहले ही विनाश हो चुका है (मेडागास्कर का डोडो इसका प्रसिद्ध उदाहरण है)। मनुष्य एक क्षेत्र की प्रजातियों को दूसरे क्षेत्र में लाता है, तब भी आवासों की हानि होती है और मौजूद समुदायों का संतुलन बिगड़ता है। इस प्रक्रिया में जानबूझकर या अनजाने में लाई गई प्रजातियों ने अनेक स्थानीय प्रजातियों का विनाश किया है और मानव के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला है। (यूपेटोरियम, लैंटना, वाटर हायसिंथ, 'कांग्रेस ग्रास' या पार्थेनियम इसकी कुछ बदनाम मिसालें हैं।)

कृषि या उद्योग के मकसद से बदले जाने के कारण या जल, वायु और मिट्‌टी के प्रदूषण के कारण प्राकृतिक पारितंत्रों का विनाश हो रहा है। इस कारण प्रजातियों का विनाश भी होता है।

4. विकास तथा पर्यावरण प्रदूषण

(DEVELOPMENT AND ENVIRONMENT POLLUTION)

प्रदूषण किसे कहते हैं?

पर्यावरण घटकों अर्थात् वायु, जल और मृदा की भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक विशिष्टता में लाया जाने वाला कोई भी अवांछनीय परिवर्तन जिससे जीवन स्वरूपों तथा जीवनाश्रयी तंत्रों पर बुरा प्रभाव पड़ता हो, प्रदूषण कहलाता है। आप यह भी कह सकते हैं कि मानव क्रियाकलापों द्वारा पैदा होने वाला कोई भी प्रतिकूल परिवर्तन प्रदूषण है। पर्यावरण घटक को संदूषित करने वाला साधन प्रदूषक (pollutant) कहलाता है।

प्रदूषकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) **अनिम्नीकरणीय प्रदूषक (Non-degradable pollutants) :** ये प्रदूषक बहुत लंबे समय तक अपरिवर्तित रूप में कायम बने रहते हैं जैसे पीड़कनाशी, भारी धातुएं, रबड़, नाभिकीय अपशिष्ट आदि। प्लास्टिक भी इसी श्रेणी में आते हैं। ऐसे पदार्थ जीवाणुओं द्वारा विखंडित अथवा विघटित नहीं होते। ये प्रदूषक प्रकृति में बहुत लंबे समय तक बने रहते हैं और पदार्थ चक्रों के साथ-साथ खाद्य शृंखलाओं में से गुजरते हुए संचित होते-होते जैव-आवर्धित हो जाते हैं और खतरनाक स्तर तक पहुंच जाते हैं।

(ii) **जैवनिम्नीकरणीय प्रदूषक (Biodegradable pollutants) :** कुछ प्रकार के प्रदूषक जैसे कि कागज, उद्यान कचरा, घरेलू जल-मल, कृषि आधारित अपशिष्ट तथा उर्वरक आदि जीवाणुओं की विघटन प्रक्रियाओं के द्वारा विघटित होकर सरलतर अंत्य-उत्पादों में परिवर्तित हो जाते हैं। ये सरल उत्पाद प्रकृति की कच्ची सामग्री होते हैं जिन्हें पारितंत्र में पुनः उपयोग में लाया जाता है। इन अस्थायी प्रदूषकों का विघटन प्राकृतिक रूप में और जल-मल उपचार संयंत्र जैसी अभियंत्रित प्रणालियों के द्वारा होता रहता है। ऐसी मानव-निर्मित प्रणालियों द्वारा प्रकृति की विघटन-क्षमता बढ़ जाती है। ये जैवविघटनशील प्रदूषक उस समय एक खतरा बन जाते हैं जब पर्यावरण में उनका निवेश विघटन क्षमता से ज्यादा हो जाता है।

प्रदूषकों का पर्यावरण में प्रवेश निश्चित स्रोतों अथवा अनिश्चित स्रोतों से हो सकता है। निश्चित स्रोत (point sources) वे स्पष्ट एवं परिसीमित स्रोत होते हैं जहां से प्रदूषक/बहि:स्राव किसी चिमनी द्वारा या किसी विसर्जन नली द्वारा छोड़े जाते हैं जैसे कि उद्योगों अथवा नगर निगमों के क्षेत्रों के पाइपों अथवा सुरंगों के द्वारा। अनिश्चित स्रोत (non-point sources) अर्थात् क्षेत्र स्रोत ऐसे स्रोत होते हैं जिनसे विसर्जित होने वाले प्रदूषक एक बड़े क्षेत्र में फैल जाते हैं। इनके कुछ उदाहरण हैं- निर्माण क्षेत्रों से तथा कृषि भूमियों से होने वाले अप-प्रवाह। निश्चित स्रोतों से निकलने वाले प्रदूषकों का स्थान-गत उपचार करके उन्हें नियंत्रण किया जा सकता है, परंतु अनिश्चित स्रोतों से निकलने वाले प्रदूषण का उपचार करना कठिन है क्योंकि इसके स्रोत व्यापक क्षेत्र में फैले होते हैं।

पर्यावरण में प्रदूषण का वर्धन

सतत् बढ़ती मानव जनसंख्या के कारण लकड़ी, खनिज, जल, मृदा, कोयला, तेल, गैस आदि जैसे संसाधनों एवं ऊर्जा-स्रातों की मांग बढ़ती गयी है। सारणी में आप देख सकते हैं कि औद्योगीकरण के पिछले पचास वर्षों के दौरान संसाधनों का वर्धन और उनका उपयोग बढ़ता गया और इससे पर्यावरण कितना प्रभावित हुआ है।

सारणी: संसाधनों के उपयोग, उनके वर्धन तथा पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की बढ़ती प्रवृत्ति

विषय वस्तुएं	सांद्रण 1950 में	सांद्रण 1995 में	पर्यावरण पर प्रभाव
कोयला उपयोग	884 मिलियन टन तेल तुल्य	2083 मिलियन टन तेल तुल्य	जलवायु परिवर्तन
तेल उत्पादन	518 मिलियन टन	2953 मिलियन टन	जलवायु परिवर्तन
प्राकृतिक गैस उत्पादन	180 मिलियन टन तेल तुल्य	2128 मिलियन टन तेल तुल्य	जलवायु परिवर्तन
उर्वरक उपयोग	14 मिलियन टन	125 मिलियन टन	जल प्रदूषण
CFC उत्पादन	42 हजार टन	300 हजार टन	ओजोन परत क्षीणता
नाभिकीय आयुध	304	45100	वैश्विक सुरक्षा
मानव जनसंख्या	2.55 अरब	5.6 अरब से ज्यादा	परिवर्तित भूमि उपयोग एवं संसाधन उपयोग प्रतिरूप

समस्त प्राणि स्पीशीज में मात्र मानव ही एक ऐसी स्पीशीज है जिनमें पर्यावरण के प्रति अनुकूलन करने की तथा पर्यावरण में जोड़-तोड़ करने की क्षमता है। प्रौद्योगिकियों ने हमें इस योग्य बना दिया कि हम प्रकृति की तंगहालियों पर बहुत हद तक काबू पाकर कहीं भी रह सकते हैं और काम कर सकते हैं। तदुपरांत, मानव जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि, वनोन्मूलन, लाभोन्मुख पूंजीवाद तथा प्रौद्योगिकी-उन्नतियों ने प्रदूषण संकट में योगदान दिया है। हमारी संसाधन उपभोग रणनीतियों एवं जीवन-शैलियों ने हमें प्रदूषित पर्यावरण में जीने को मजबूर कर दिया, चाहे वह घर के भीतर हो अथवा बाहर।

हमारे घरों, दफ्तरों तथा अन्य भवनांतरिक क्षेत्रों में प्रदूषकों के पाए जाने का स्पष्ट कारण है, भवनों के भीतर प्रदूषण के विभिन्न प्रकार के संभावित स्रोत (सारणी) । लोग अपना बहुत समय भवनों के भीतर बिताते हैं; अत: भवनांतरिक पर्यावरण को भी समझना चाहिए।

सारणी: भवनों के भीतर और बाहर प्रदूषण पैदा करने वाले कुछ स्रोतों के उदाहरण

स्रोत	प्रदुषक
	मुख्यत: भवनों के भीतर
❖ पार्किकल बोर्ड, फोम तापरोधी, सजावटी साज सामान, सीलिंग-टाइल्स, तम्बाकू का धुंआ	फॉर्मेल्डीहाइड
❖ इमारती सामान-कंकरीट, पत्थर, पानी और मृदा	रेडॉन
❖ फायर-प्रूफिंग, ऊष्मा एवं विद्युतरोधी, ध्वनिकी (acoustic)	ऐस्बेस्टॉस, ''मिनरल-वूल'' संश्लिष्ट रेशे
❖ आसंजक, विलायक, रंग-रोगन, भोजन पकाना, सौंदर्य प्रसाधन, तम्बाकू का धुआं	कार्बनिक पदार्थ, निकोटीन, ऐअरोसॉल, वाष्पशील कार्बनिक पदार्थ
❖ रंगरोगनों में पीड़कनाशी, प्रयोगशालाओं में पदार्थों का छलकना-गिरना, स्प्रे	पारा, कैडमियम
❖ उपभोक्ता उत्पाद, घरेलू धूलि, जानवरों का कचरा, संक्रमित जीव	विभिन्न संघटना वाले ऐअरोसॉल, ऐलर्जन, जीवनक्षम सूक्ष्मजीव
	मुख्यत: बाहर
❖ कोयला एवं तेल दहन, स्मेल्टर्स, आग	सल्फर के ऑक्साइड
❖ प्रकाशरासायनिक अभिक्रियाएं	ओजोन
❖ मोटरगाड़ियां, स्मेल्टर्स	सीसा, मैंगेनीज
❖ मृदा कण, औद्योगिक निष्कासन	कैल्सियम, क्लोरीन, सिलिकॉन, कैड्मियम
❖ पेट्रोरसायन विलायक, अनजले ईंधनों का वाष्पीकरण	कार्बनिक पदार्थ
	बाहर और भीतर, दोनों

❖ ईंधन दहन	नाइट्रोजन के ऑक्साइड
❖ असम्पूर्ण ईंधन दहन	कार्बन मॉनोक्साइड
❖ जीवाश्म ईंधन दहन, उपापचयन क्रिया	कार्बन डाइऑक्साइड
❖ पुनर्निलंबन, वाष्प-संघनन, दहन उत्पाद	निलम्बित कणिकीय पदार्थ
❖ पेट्रोलियम उत्पाद, दहन, पेंट, उपापचयन क्रिया, पीड़कनाशी, कीटनाशी, कवकनाशी	कार्बनिक पदार्थ, भारी धातुएं
❖ सफाई उत्पाद, कृषि, उपापचयन उत्पाद	अमोनिया

वायु प्रदूषण

क्या आपने कभी सोचा कि वायु भी उतना ही एक संसाधन है जितना कि जल और भोजन? जिन्दा रहने के लिए औसत व्यस्क मानव, प्रतिदिन जितना भोजन और पानी का सेवन करता है उससे छह गुना ज्यादा उसे गैसों का विनिमय करना होता है। यही करण है कि वायु हमारे लिए इतनी महत्वपूर्ण है। अधिकतर जीवों के लिए ऑक्सीजन पर्यावरण से तुरंत ली जाने वाली आवश्यकता है। भोजन तथा जल के बिना हम कुछ घंटों या कुछ दिन तक जीवित रह सकते हैं मगर ऑक्सीजन के बिना केवल कुछ ही मिनट तक। वायु की सामान्य संघटना में कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हानिकारक होता है। पर्यावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का होना हरे पौधों के लिए अनिवार्य है क्योंकि वे इससे अपना भोजन निर्मित करते हैं। मगर यदि कार्बन डाइऑक्साइड का सांद्रण सीमा से अधिक हो जाए तो वायु प्रदूषित एवं विषैली हो जाती है।

वायु प्रदूषकों के प्ररूप

मोटे तौर पर प्रदूषकों को निम्नलिखित प्ररूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. **प्राकृतिक प्रदूषक (Natural pollutants) :** ये प्रदूषक प्राकृतिक स्रोतों से अथवा प्राकृतिक क्रियाकलापों से निकलते हैं। कुछ उदाहरण हैं : पौधों के पराग और पौधों के वाष्पशील कार्बनिक यौगिक; ज्वालामुखी विस्फोटों तथा जैविक पदार्थों के सड़ने गलने से निकलने वाली कई गैसें जैसे, सल्फर डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड आदि; दावानलों तथा समुद्र से निकलने वाले कण, प्राकृतिक रेडियोसक्रियता आदि। सामान्यत: प्राकृतिक निष्कासनों की सांद्रता कम होती है और उनसे गंभीर हानि नहीं होती।

2. **प्राथमिक प्रदूषक (Primary pollutants) :** ये प्रदूषक प्राकृतिक अथवा मानव क्रियाकलाप के द्वारा सीधे वायु में निष्कासित होते हैं। इनके उदाहरण हैं: ईंधन जलाने से निकलने वाले सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, विविध हाइड्रोकार्बन तथा कणिकाएं।

3. **द्वितीय प्रदूषक (Secondary pollutants) : सूर्य के विद्युतचुम्बकीय विकिरणों के प्रभाव के अधीन प्राथमिक प्रदूषकों तथा सामान्य वायुमण्डलीय यौगिकों के बीच रासायनिक अभिक्रियाओं के परिणामस्वरूप द्वितीयक प्रदूषकों का निर्माण होता है।** उदाहरण के लिए प्राथमिक प्रदूषक सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) वायुमण्डल की ऑक्सीजन (O_2) के साथ अभिक्रिया करके सल्फर ट्राइऑक्साइड (SO_3) बनाता है जो एक द्वितीयक प्रदूषक है। सल्फर ट्राइऑक्साइड जल वाष्प से मिलकर एक और द्वितीयक प्रदूषक सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) बनाता है जो कि अम्ल वर्षा का एक घटक है। एक और उदाहरण है शहरी क्षेत्रों के ऊपर किसी खुली धूप वाले दिन ओजोन का बनना। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) तथा आक्सीजन परमाणुओं (O) में विखंडित हो जाती है। ये ऑक्सीजन परमाणु ऑक्सीजन के साथ संयोजित होकर ओजोन (O_3) बनाते हैं। NO_2 से दो अन्य द्वितीयक प्रदूषण भी बनते हैं- पेरॉक्सी एसिटिल नाइट्रेट (peroxy acetyl nitrate, PAN) तथा नाइट्रिक अम्ल (HNO_3)। धूमकोहरा (smog), धुंए और कोहरे का मिश्रण होता है जो नाइट्रोजन के ऑक्साइडों तथा विविध हाइड्रोकार्बनों के बीच सूर्य के प्रकाश द्वारा शुरू होने वाली जटिल अभिक्रियाओं के कारण बनता है। धूमकोहरा अधिकतर शहरी क्षेत्रों में विशेषकर ठहरी हुई हवा के समय बनता है। इसका मुख्य कारण है मोटर गाड़ियों की अत्यधिक संख्या।

मुख्य वायु प्रदूषक, उनके स्रोत तथा मानवों एवं पर्यावरण पर उनके प्रभाव

प्रदूषक	उत्पादन-स्रोत	प्रभाव
❖ कार्बन के ऑक्साइड (CO_x) – कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) – कार्बन मोनोक्साइड (CO)	कोयला, तेल तथा अन्य ईंधनों का ऊर्जा-उत्पादन के लिए दहन; निर्माण एवं परिवहन; जैवसंहति का जलाया जाना	CO_2 की एक अहम् भूमिका ग्रीन-हाऊस प्रभाव पैदा करने में है; इससे हल्का कार्बोनिक अम्ल बनता है जो अम्ल वर्षा में योग देता है; CO हीमोग्लोबिन के साथ आबंधित होकर मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करती है, जिससे श्वासावरोध (asphyxia) हो जाता है। हीमोग्लोबिन में O_2 की तुलना में CO के लिए 250 गुना अधिक बंधुता होती है।
❖ सल्फर के ऑक्साइड (SO_x) – सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) – सल्फर ट्राइऑक्साइड (SO_3) – सल्फेट (SO_4)	सल्फर युक्त ईंधन जैसे कोयले का दहन, पेट्रोलियम निष्कर्षण तथा इनकी रिफाइनिंग, कागज निर्माण; नगरपालिका कचरा जलाना; अयस्क पिघला कर धातु निष्कर्षण	SO_2 में सर्वाधिक हानिकारक प्रभाव होते हैं क्योंकि यह मानवों एवं अन्य प्राणियों के फेफड़ों में गंभीर हानि पहुंचा सकती है तथा अम्ल वर्षा की एक महत्वपूर्ण पुरोवर्ती होती है, इसके हानिकर प्रभावों में आते हैं रंग-रोगन और धातुओं का संक्षारण तथा प्राणियों और पौधों को क्षति एवं उनकी मृत्यु।
❖ नाइट्रोजन के ऑक्साइड (NO_x) – नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO) – नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) – नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) – नाइट्रेट (NO_3)	ईंधनों का जलना; जैव संहति का जलना; उर्वरकों की निर्माण प्रक्रिया के उत्पाद	द्वितीयक प्रदूषक पेरॉक्सी ऐसीटिल नाइट्रेट (PAN) तथा नाइट्रिक एसिड (HNO_3) का बनना: पादप वृद्धि का दमन और ऊतक क्षति, आंखों में चिरमिराहट; इन्फ्लूएंजा जैसे वाइरल संक्रमण; वायुमण्डल में बने नाइट्रेट के कारण देखने में बाधकता। यही नाइट्रेट मृदा में पादप वृद्धि बढ़ाते हैं।
❖ हाइड्रोकार्बन्स (HCs) इन्हें वाष्पशील कार्बनिक यौगिक भी कहते हैं (VOCs) – मीथेन (CH_4) – ब्यूटेन (C_4H_{10}) – ऐथिलीन (C_2H_4) – बेंजीन (C_6H_6) – बेंजोपाइरीन ($C_{20}H_{12}$) – प्रोपेन (C_3H_8)	गैसोलीन टैंकों, काब्युरिटर्स से वाष्पन; ईंधनों, जैवसंहति का जलना; नगरनिगमों के भूमि-भराव; जल-मल की सूक्ष्मजैविकी क्रिया; औद्योगिक प्रक्रिया जिसमें विलायक निहित होते हैं	इनका मानवों पर कैंसरजनी प्रभाव हो सकता है; उच्चतर सांद्रण पौधों और प्राणियों के लिए विषैले हो सकते हैं; वायुमण्डल में होने वाले जटिल रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा ये हानिकर यौगिकों में बदल सकते हैं; इनमें से कुछ सूर्य के प्रकाश के साथ ज्यादा अभिक्रियक होते और प्रकाशरासायनिक धूमकोहरा बनाते हैं।
❖ अन्य कार्बनिक यौगिक – क्लोरोफ्लूरोकार्बन्स (CFCs) – फार्मेल्डीहाइड (CH_2O) – मेथिलीन क्लोराइड (CH_2Cl_2) – ट्राइक्लोरो एथिलीन (C_2HCl_3) – वीनाइल क्लोराइड (C_2H_3Cl) – कार्बन टेट्राक्लोराइड (CCl_4) – एथिलीन ऑक्साइड (C_2H_4O)	ऐरोसॉल स्प्रे, फास्ट-फूड पात्र बनाने के लिए फोम तथा प्लास्टिक, रेफ्रिजरेशन	CFCs से समतापमण्डलीय ओजोन की मात्रा में कमी जिससे पृथ्वी की सतह पर पराबैगनी प्रकाश का अधिक प्रवेश होता है; अधिक मात्रा में आती हुई UV विकिरणों से त्वचा-कैंसर होता है तथा उनसे विविध जीव स्वरूपों पर घातक प्रभाव हो सकता है।

❖ धातुएं तथा अन्य अकार्बनिक यौगिक – सीसा (Pb), पारा (Hg) – हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) – हाइड्रोजन फ्लोराइड (HF)	तेल कुएं तथा रिफाइनरी; परिवहन वाहन; नगरपालिका भूमि-भराव; उर्वरक सिरैमिक्स; कागज, रसायन तथा पेंट उद्योग; पीड़कनाशी; कवकनाशी, ऐलुमिनियम उत्पादन; कोयला गैसीभवन।	श्वसन समस्याएं पैदा होती हैं, विषालुता आती है जिनसे मानवों तथा अन्य प्राणियों की मृत्यु तक हो सकती है; फसलों को क्षति; कैंसरजनी प्रभाव।
❖ तरल बुंदिकाएं – सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) – नाइट्रिक अम्ल (HNO_3) – तेल – पीड़कनाशी जैसे DDT तथा मैलेथिऑन	कृषि पीड़कनाशी; धूमन, तेल रिफाइनरी; वायुमण्डल में प्रदूषकों की अभिक्रियाएं।	अम्ल वर्षा में योगदान; संक्षरण, विविध जीवों को क्षति
❖ निलम्बित कणिकीय पदार्थ (SPM-ठोस कण) – धूल, मिट्टी, सल्फेट लवण, भारी धातु लवण, कार्बन (कालिख) के अग्नि कण, ऐस्बेस्टॉस, तरल स्प्रे, कुहासा, आदि	ईंधन दहन; भवन निर्माण; खनन; ताप बिजलीघर; पत्थर तोड़ना; औद्योगिक प्रक्रियाएं; दावानलें; अपशिष्ट भस्मीकरण	श्वसन-तंत्र पर चिरकालिक प्रभाव; हरी पत्तियों की सतह पर जमाव जिससे CO_2 के अवशोषण तथा O_2 के विमोचन में बाधा आती है; सूरज की रोशनी में रुकावट; कणों के आकार जो 0.1 से 10μm के बीच के होते हैं, उनसे सबसे ज्यादा फेफड़ा क्षति होती है।
❖ प्रकाशरासायनिक आक्सिडैन्ट्स – ओजोन (O_3), – पेरॉक्सी एसिल नाइट्रेट्स (PANs) – फॉर्मेल्डीहाइड (CH_2O) – ऐसीटएल्डिहाइड (C_2H_4O) – हाइड्रोजन पेरॉक्साइड (H_2O_2) – हाइड्रॉक्सिल मूलक (HO)	वायुमण्डल में प्रकाशरासायनिक अभिक्रियाएं सूर्य के प्रकाश में होने वाली, नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन	धुंध पैदा करते हैं; आंखों, नाक तथा गले में जलन; श्वसन समस्याएं; सूर्य के प्रकाश आने में बाधा

वायु प्रदूषकों का स्वास्थ्य पर प्रभाव

प्रदूषक	WHO सीमाएं	शरीर में आण्विक स्तर पर प्रभाव	स्वास्थ्य प्रभाव
कार्बन मॉनोक्साइड	100 mg/m^3 (86 ppm) 15 मिनट के ऊपर 10 mg/m^3 (8.6 ppm) 8 घंटे के ऊपर	❖ हीमोग्लोबिन से बंधन हेतु ऑक्सीजन की प्रतिस्पर्धी संदमक, हीमोग्लोबिन के लिए ऑक्सीजन की अपेक्षा 240 गुना अधिक बंधुता	❖ सिर दर्द, कमजोरी, थकावट और निद्रालुता, श्वासरोधित, अधिक मात्रा में जानलेवा ❖ रक्त की ऑक्सीजन-वहन क्षमता कम कर देती है, रक्त प्रवाह में अधिक प्रतिरोध, हृदय दोषों में बढ़ोतरी ❖ केंद्रीय तंत्रिका तंत्र, संवेदन ग्रहण तथा प्रतिवर्तों का प्रभावित होना ❖ दृष्टि तथा मस्तिष्क हानियां

नाइट्रोजन के ऑक्साइड (NO_2), विशेषकर नाइट्रोजन डाइऑक्साइड	(NO) के लिए 400 $\mu m/m^3$ (208 ppb) 1 घंटे के ऊपर 150 $\mu m/m^3$ (78 ppb) 24 घंटों के ऊपर	❖ कोशिका झिल्लियों के लिपिडों का उपचयन ❖ कोशिकाओं का pH गिर जाता तथा एंजाइम क्रियाएं गड़बड़ा जाती है	❖ आंखों में जलन ❖ श्वसन पथ में जलन, श्वसन पथ में सूजन, फेफड़े पूरा काम नहीं करते ❖ रक्त की ऑक्सीजन वहन क्षमता में ह्रास, घट गया फुफ्फुस कार्य ❖ प्रतिरक्षा अनुक्रिया में कमी, वाइरस (विषाणु) संक्रमण के लिए प्रवृत्त
सल्फर के ऑक्साइड	40-60 $\mu g/m^3$ एक वर्ष के ऊपर	❖ कोशिकाओं का pH कम कर देते हैं और एंजाइम क्रियाएं	❖ आंख, नाक और श्लेष्म अस्तर में जलन ❖ सांस उखड़ना, खांसी, दम घुटना ❖ ऊतक द्रव का एकत्रित होना, सूजन ❖ चिरकालिक श्वसनीशोथ, फुफ्फुस फाइब्रोसिस, अल्पकालिक एवं चिरकालिक दमा ❖ पूर्वविद्यमान हृदय एवं फेफड़ा रोगों का बढ़ जाना
निलम्बित कणिकीय पदार्थ (SPM)	40-60 $\mu g/m^3$ एक वर्ष के ऊपर	❖ उत्परिवर्तजनी रसायनों से युक्त SPM से DNA की क्षति होती है	❖ गले और श्वसन पथ में जलन, फेफड़ों का प्रभावित होना ❖ फेफड़ों के कार्य में गिरावट ❖ हृदय पर दबाव ❖ कैंसरजनी प्रभाव ❖ अकाल मृत्यु, श्वसन रोगों तथा हृद्-परिसंचरण में कार्यहीनता से मृत्यु
पौलीसाइक्लिक ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन्स बेंजीन, बेंजोपाइरीन हाइड्रॉकार्बन्स –मीथेन –ब्यूटेन –प्रोपेन, आदि	WHO के अनुसार कोई स्तर सुरक्षित नहीं कोई विशिष्ट सीमा नहीं	❖ कोशिकाओं के विविध रचकों के साथ अभिक्रिया करते हैं ❖ DNA उत्परिवर्तन पैदा करते हैं	❖ कैंसरजनी, घातक हो सकते हैं ❖ खांसी, आंखों में जलन ❖ निद्रालुता
सीसा	0.5–1.0 $\mu g/m^3$ 1 वर्ष के ऊपर	❖ एंजाइम कार्यों में बाधा	❖ तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है ❖ मानसिक विकास में गड़बड़ी ❖ रक्त चाप का बढ़ जाना
प्रकाश-रासायनिक ऑक्सीकारक जैम ओजोन	150–200 $\mu g/m^3$ (75-100 ppm) एक वर्ष के ऊपर	❖ कोशिकीय रचकों का आक्सीकरण करता है।	❖ आंख, नाक और गले में जलन ❖ खांसी और सीने में जलन ❖ फेफड़ों के कार्य में कमी, श्वसनीअवरोध, फाइब्रोसिस, फेफड़ों तथा श्वसन ऊतकों का जीर्णन ❖ हृदय-घात हो सकता है ❖ दमा रोगियों, बच्चों और जो शरीर से ज्यादा काम करते हैं उनके लिए भारी खतरा।

जल प्रदूषण

कोई भी भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक परिवर्तन जिससे जल की गुणवत्ता घट जाती हो, जल-प्रदूषण पैदा करता है। जल एक सार्वत्रिक विलायक होने के नाते अपने भीतर नानाविध प्रकार के पदार्थों को घुला सकता है। इस गुणवत्ता के कारण जल का संदूषित हो जाना स्वाभाविक ही होता है। वाष्पन द्वारा उड़कर पानी शुद्ध हो जाता है लेकिन जैसे ही वह वर्षा के रूप में जमीन पर गिरता है, मार्ग में आने वाली विलयशील गैसें, कणिकाएं आदि उसमें मिल जाते हैं (चित्र 4.9)।

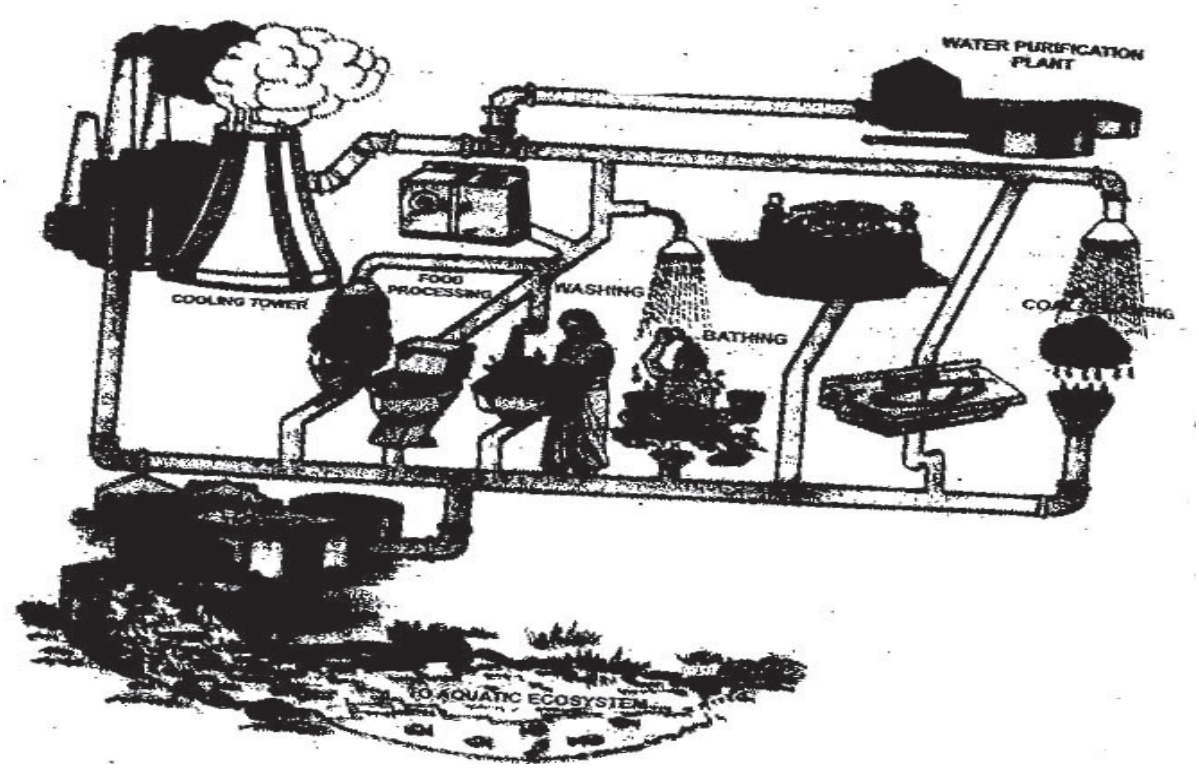

चित्र 4.9: जल प्रदूषण पैदा करने वाले दिन-प्रतिदिन के मानवीय क्रियाकलाप

प्रदूषित जल हमारे स्वास्थ्य, जलीय जीवन तथा अन्य जीवों के लिए एक खतरा है। जल-निकायों, जैसे कि तालाबों, झीलों तथा भूमिगत जल में, पाया जाने वाला प्रदूषण स्थानीकृत होकर वहीं सीमित रहता है। इससे प्रदूषण की गंभीरता बढ़ जाती है। मानव-जनित जल प्रदूषण के मुख्य स्रोतों में आते हैं: जल-मल, कचरा, कूड़ा, औद्योगिक तथा कृषि अपशिष्ट जैसे कि उर्वरक एवं पीड़कनाशी। आमतौर से जल निकाय में प्रदूषकों को सोख लेने अथवा उनका विघटन करने की क्षमता हुआ करती है। परंतु यदि जल में पदार्थों का निवेश उसकी क्षमता से अधिक हुआ तो जल-निकाय प्रदूषित हो जाता है। चित्र 4.9 में ऐसे नियमित मानव क्रियाकलाप दर्शाए गए हैं जिनसे लगातार प्रदूषण होता रहता है।

जल प्रदूषकों के प्ररूप

जल प्रदूषकों को निम्नलिखित तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. जैविकीय साधन (Biological agents)

जहां तक मानव स्वास्थ्य का संबंध है, रोगजनक जीव जैसे विषाणु, जीवाणु तथा प्रोटोजोआ गंभीर प्रकार के जल प्रदूषक हैं। हैजा, जीवाणुवीय तथा अमीबी पेचिश, जठरांत्रशोथ, टाइफाइड, पोलियो, वाइरल हेपेटाइटिस, कृमि संक्रमण, फ्लू आदि कुछ खास जल-वहनी रोग हैं। कुछ कीट जिनके जलीय लार्वा होते हैं, मलेरिया, डेंगू पीत ज्वर तथा फाइलेरिऐसिस फैलाते हैं। भारत में वर्षा ऋतु के आरम्भ होने पर प्राय: ऐसी महामारियां शुरू हो जाया करती हैं। बाढ़, जलाक्रांति, पाइपों का फटना, जल-मल का पेय जल में मिल जाया करना, बरसात की आम समस्याएं हैं जिनसे ये महामारियां होती हैं। घनी आबादी वाले क्षेत्र, अनियोजित औद्योगिक एवं मानव बस्तियां तथा उचित नागरिक सुविधाओं के अभाव आदि से अक्सर इन बीमारियों को योगदान मिलता है। मानव अपशिष्टों, जानवरों के अपशिष्टों, घरेलू जल-मल तथा चमड़ा-शोधशालाओं एवं बूचड़खानों से निकले अपशिष्ट जल विसर्जनों से जल का संदूषण होता है।

2. रासायनिक साधन (Chemical agents)

रासायनिक प्रदूषक हो सकते हैं, जलविलयशील, जल-अविलयशील या फिर फास्फेट्स ऑक्सीजन-मांग वाले अपशिष्ट। ये अकार्बनिक (Inorganic) हो सकते हैं, जैसे नाइट्रेट्स, अम्ल, लवण तथा विषैली भारी धातुएं। कार्बनिक (Organic) रासायनिक प्रदूषकों में आते हैं तेल, गैसोलीन, पीड़कनाशी, रंग-रोगन, प्लास्टिक्स, धुलाई में काम आने वाले विलायक, डिटर्जेंट तथा जैविक अपशिष्ट जैसे घरेलू जल-मल, पशु जल अपशिष्ट आदि। **रेडियोसक्रिय पदार्थ** (Rodioactive substances) जो तीसरी श्रेणी के रासायनिक प्रदूषक होते हैं, यूरेनियम अयस्क के संसाधन के फलस्वरूप तथा शोध प्रयोगशालाओं से निकले अपशिष्ट होते हैं।

3. भौतिक साधन (Physical agents)

निलम्बित ठोस पदार्थ, अवसादी ठोस पदार्थ और तापमान ऐसे भौतिक कारक हैं जिनसे जल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इन जल प्रदूषकों से कई प्रकार के कुप्रभाव होते हैं, जैसे गाद बनना, जल मार्गों का अवरुद्ध हो जाना, बांधों का भर जाना तथा पानी का गदला हो जाना। जलीय जीवों को इस प्रकार के जल में अपने गिलों (क्लोमों) से सांस लेना समस्या बन जाती है। निलम्बित कार्बनिक तथा खनिज ठोस पदार्थ, विषैले पदार्थों, जैसे भारी धातुओं का अधिशोषण कर लेते हैं और उन्हें खाद्य-शृंखला में पहुंचा देते हैं। जल निकाय में ऊष्मा-धारी जल के मिलने से जल निकाय में ताप प्रदूषण पैदा होता है।

प्रमुख जल प्रदूषक, उनके स्रोत एवं प्रभाव

प्रदूषक	स्रोत	प्रभाव
जैविकीय कारक जीवाणु, परजीवी कवक तथा प्रोटोजोआ	मानव जल-मल; प्राणि एवं पादप अपशिष्ट; सड़ता-गलता जैविक पदार्थ; औद्योगिक अपशिष्ट (तेल शोधक कारखाने, पेपर-मिल, खाद्य-संसाधन इकाइयां); प्राकृतिक तथा शहरी अपप्रवाह	ऑक्सीजन-भोगी जीवाणु इन जैविक अपशिष्टों को खाते हैं जिससे जल निकाय की ऑसीजन समाप्त होने लगती हैं; ऑक्सीजन के अभाव में जीव नष्ट हो जाते हैं, दुर्गन्ध निकलती है, मवेशियों में विष पहुंचता है
रासायनिक कारक अकार्बनिक रसायन तथा खनिज अम्ल, लवण, धातुएं जैसे कि सीसा और पारा, पादप पोषक जैसे फॉस्फेट्स तथा नाइट्रेट्स	थल से प्राकृतिक अपप्रवाह; शहरी तूफान; औद्योगिक अपशिष्ट, अम्ल जमाव; सीसायुक्त गैसोलीन; सीसा-गलन; सिंचाई, पीड़कनाशी; कृषि अपप्रवाह; खनन; तेल खनन स्थान; घरेलू जल-मल; अपर्याप्त अपशिष्ट जल उपचार; खाद्य संसाधन उद्योग; डिटर्जेंट जिनमें फॉस्फेट होते हैं	खाद्य-शृंखला के माध्यम से विविध प्रकार के जीवों एवं मानवों के लिए आविषी, जिनसे आनुवंशिक एवं जन्मजात दोष पैदा हो सकते हैं; हानिकारक 'खनिजों की जल में अधिक विलयशीलता, घरेलू, कृषि एवं औद्योगिक उपयोग के लिए जल को अनुपयुक्त बना देते हैं; मृदा में लवणता वर्धन; जल निकायों के पारितंत्र में गड़बड़ी तथा जल-सुपोषण पैदा होता है
कार्बनिक रसायन पीड़कनाशी, शाकनाशी, डिटर्जेंट, क्लोरीन के यौगिक, तेल, ग्रीज, तथा प्लास्टिक्स	कृषि, वानिकी; पीड़क नियंत्रण उद्योग; घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्ट; जल विसंक्रमण प्रक्रियाएं; कागज उद्योग; ब्लीचिंग प्रक्रिया; मशीन तथा पाइपलाइन अपशिष्ट; तेल बिखराव; घर; सामुदायिक तथा औद्योगिक उपयोग	जलीय जीवन के लिए आविषी तथा उन जीवों के लिए भी जो ऐसी जल निकायों पर निर्भर करते हैं; जल निकायों का सुपोषण
रेडियोसक्रिय पदार्थ	शोध प्रयोगशालाओं तथा अस्पतालों में निकले नाभिकीय अपशिष्ट; यूरेनियम अयस्क का संसाधन; नाभिकीय संयंत्र	रेडियोन्यूक्लाइड खाद्य-शृंखला में प्रवेश करते हैं और जन्मजात एवं आनुवंशिक दोष पैदा करते हैं; कैंसर के उत्पन्नकारी कारक
भौतिक कारक कणिकाए तथा ऊष्मा	मृदा अपरदन; कृषि से अपप्रवाह; खनन, वानिकी तथा भवन-निर्माण क्रियाकलाप; बिजलीघर, औद्योगिक शीतलन	जल-मार्गों, बंदरगाहों तथा निकायों में भराव, तापमान की वृद्धि से जल में ऑक्सीजन की विलयशीलता कम हो जाती है; जल-राशियों में जीव-सृष्टि का ह्रास

विविध उद्देश्यों के लिए नित्य-प्रति काम में आने वाले कुछ आविषी रासायनों के स्वास्थ्य प्रभाव

आविष का नाम	उद्भासन स्रोत	स्वास्थ्य पर प्रभाव
पौलीक्लोरिनेटेड बाइफीनाइल्स (PCBs)	❖ ट्रांसफार्मरों तथा अन्य बिजली उपकरणों के निर्माण में काम आते हैं ❖ प्लास्टिक के पात्रों, एपॉक्सी रेजिनों, विविध प्रकार के दीवार आवरणों एवं कालीन-पर्दे आदि के निर्माण में काम आते हैं ❖ साबुन, क्रीम, पेंट, ग्लू, कागज, वैक्स तथा अन्य उत्पादों के बनाने में इस्तेमाल होते हैं	❖ थकावट, उल्टियां आना ❖ अस्थायी अंधता ❖ त्वचा धब्बे ❖ पेट-दर्द ❖ अंतड़ियों में गड़बड़ी ❖ गर्भपात ❖ कैंसरजनी भी हो सकते हैं
विनाइल क्लोराइड	❖ पौलीविनाइल क्लोराइड के रूप में प्लास्टिक्य में काम आता है	❖ जन्म दोष ❖ जिगर, हड्डियों तथा परिसंचरण तंत्र में हानि ❖ जिगर, मस्तिष्क, लसीका तंत्र का कैंसर
बेंजीन	❖ कला और शिल्प के सामान, डिटर्जेंट, मोल्डिंग, रेशों आदि में इस्तेमाल होती है ❖ कीट नाशी के तथा गैस में जोड़े जाने में काम आती है	❖ रक्ताल्पता ❖ अस्थि मज्जा में क्षति, ल्यूकीमिया
फ्थैलेट्स (Phthalates)	❖ प्लास्टिसाइजरों में इस्तेमाल होता है (प्लास्टिक रेजिनों में मिलाये जाते हैं)	❖ केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को हानि
DDT (डाइक्लोरो डाइफीनाइल ट्राईक्लोरइथेन	❖ पीड़कनाशी	❖ कंपकपी, चक्कर आना, बेहोशी ❖ केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को हानि ❖ संभवत: कैंसरजनी
आल्ड्रिन/डीऐल्ड्रिन	❖ पीड़कनाशी	❖ कंपकपी, चक्कर आना ❖ गुर्दों को हानि ❖ संभवत: कैंसरजनी
डाइऑक्सिन	❖ औद्योगिक प्रक्रियाओं का उपजात ❖ शाकनाशियों में संदूषक ❖ अधिकतर क्लोरिनेटेड यौगिकों के जलने से निकलता है, उदाहरणत: कचरे, चिकित्सा अपक्षिष्ट एवं आविषी रसायनों के जलने से ❖ कुछ शाकनाशियों का जैसे ''एजेंट ऑरेंज'' का। संदूषक	❖ गंभीर एवं ज्यादा दिनों तक बने रहने वाले मुंहासे, तथा अन्य स्वास्थ्य समस्याएं ❖ शक्तिशाली कैंसरजनी
क्लोरिनेटेड कार्बनिक यौगिक	❖ अपशिष्ट जल के क्लोरीनेशन में बनते हैं, पेयजल में पहुंच जाते हैं	❖ कैंसरजनी
विविध नाइट्रेट और नाइट्राइट	❖ नाइट्रेट निकलते हैं सेप्टिक टैंकों, बार्नयार्डों, बहुत ज्यादा उर्वरक लगायी गयी फसलों तथा सीवेज उपचार संयत्रों से ❖ मांस, सलामी आदि के संसाधन में तथा धूमन मछली में नाइट्रेट इस्तेमाल होते हैं ❖ मानव अंतड़ियों में नाइट्रेट नाइट्राइटों में बदल जाते हैं और विशेषकर शिशुओं की अंतड़ियों में	❖ नाइट्राइट हीमोग्लोबिन के साथ संयोजित हो जाते और उसकी ऑक्सीजन वाहक क्षमता को कम कर देते हैं ❖ तीन माह से छोटे शिशुओं में नाइट्राइट द्वारा घातक रोग मेथेमोग्लोबीनीमिया (methemoglobinemia) हो जाता है ❖ दीर्घकालिक प्रभावन से डाइयूरेसिस (मूत्रता) हो जाती, तथा तिल्ली में स्टार्ची जमाव एवं रक्तस्त्राव हो जाता है
नाइट्रोसैमीन	❖ खाद्य में मौजूद अन्य ऐमीनों के साथ नाइट्रेटों की रासायनिक अभिक्रिया से बनता है	❖ कैंसरजनी

जल प्रदूषकों की श्रेणियां

प्रदूषक श्रेणी		उदाहरण
I	**मानव स्वास्थ्य समस्याएं**	
1.	संक्रामक कारक	जीवाणु, विषाणु परजीवी
2.	अकार्बनिक रसायन	अम्ल, कॉस्टिक्स, लवण, धातुएं
3.	कार्बनिक रसायन	पीड़कनाशी, डिटर्जेंट, तेल, गैसोलीन
4.	रेडियोसक्रिय सामग्री	यूरेनियम, थोरियम, सीसियम, आयोडिन, रेडॉन
II	**पारितंत्र विघटन**	
1.	ऑक्सीजन याचक अपशिष्ट	पादप एवं प्राणी अवशेष तथा खादें
2.	पादप पोषक	नाइट्रेट्स तथा फॉस्फेट्स
3.	अवसाद	मृदा, गाद
4.	तापीय	ऊष्मा

सतही जल तथा भू-जल के प्रदूषण के कुछ स्रोत

सतही जल के स्रोत

- शहरी अपप्रवाह-शहरी बस्तियां, औद्योगिक क्षेत्र
- कृषि अपप्रवाह (तेल, धातुएं, पीड़कनाशी, आदि)- कृषि क्षेत्र
- रसायनों के दुर्घटनावश बिखराव- शहरी, ग्रामीण, औद्योगिक, कृषीय
- सतही भण्डारण टैंकों अथवा पाइपलाइनों से रिसाव (गैसोलीन, तेल, आदि)- औद्योगिक, कृषीय
- अपप्रवाह (विलायक रसायन आदि) - औद्योगिक स्थल जैसे फैक्ट्रियां, शोध कारखाने, आदि
- रेडियोसक्रिय पदार्थ (दुर्घटना)- औद्योगिक,
- कृषि भूमियों, भवन निर्माण स्थलों आदि से निकले अवसाद- शहरी, ग्रामीण, औद्योगिक, कृषीय
- नदियों, झीलों, समुद्रों में वायु से नीचे गिरने वाले पदार्थ (कण, पीड़कनाशी, धातुएं, आदि)- शहरी, ग्रामीण, औद्योगिक, कृषीय

भू-जल के स्रोत

- अपशिष्ट निपटान स्थलों से रिसाव (रसायन, रेडियोसक्रिय पदार्थ, आदि)- औद्योगिक
- नीचे बनाए गए टैंकों, पाइपों आदि से रिसाव (गैसोलीन, तेल आदि)- औद्योगिक, कृषीय
- कृषि क्रियाकलापों से निस्यंदन (नाइट्रेट्स, भारी धातुएं पीड़कनाशी, शाकनाशी, आदि)- कृषीय
- सेप्टिक प्रणालियों से निस्यंदन- ग्रामीण
- खानों तथा खान अपशिष्ट ढेरों से अम्ल-प्रचुर जल का निस्यंदन- औद्योगिक
- पीड़कनाशियों शाकनाशियों, पोषकों, आदि का निस्यंदन- शहरी
- दुर्घटनावश छितराव से निस्यंदन- औद्योगिक
- बड़े औद्योगिक तथा लघुउद्योग स्थलों आदि से विलायकों, डिटर्जेंटों एवं अन्य रसायनों तथा रेडियोसक्रिय पदार्थों का निस्यंदन- शहरी, औद्योगिक
- समुद्रतटीय जल-घरों में लवण जल का पहुंचना- शहरी, ग्रामीण, औद्योगिक

भारतीय जल संसाधनों की स्थिति

भारत की अधिकतर नदियां इस समय प्रदूषित नालों की तरह बनी हुई हैं। बेतुआ, भादर, भवानी, चेलियार, दामोदर, नोयल, साबरमती तथा यमुना ऐसी ही कुछ नदियां हैं। CPCB देश के अनेक स्थानों पर जल संसाधनों की गुणवत्ता का सनिरीक्षण (monitoring) करता रहता है। इस कार्य के लिए, इन स्थानों में नदियों, झीलों, नहरों, नालियों, तालाबों तथा भू-जल स्रोतों पर केन्द्र बने हैं।

सन् 2002 के दौरान जल गुणवत्ता से प्राप्त नतीजों से पता चलता है कि नदियों की लम्बाई के संदर्भ में सतही जल के प्रदूषण स्तर अलग-अलग हैं (चित्र)। BOD अर्थात् इन जल स्रोतों में मौजूद सूक्ष्मजीवों (जीवाणु तथा विष्ठा के ''कोलिफॉर्म'') की ऑक्सीजन-उपभोग मांग के संदर्भ में जल-गुणवत्ता परिणामों का विश्लेषण किया गया। जहां-जहां 6 mg/1 से अधिक के BOD मान थे वहां-वहां जल में उच्च स्तरीय प्रदूषण था। मध्यम स्तर के प्रदूषित नदी जलों में BOD मान 3-6 mg/1 के बीच थे। जहां-जहां पानी का BOD मान 3 mg/1 से कम था वहां-वहां का पानी अपेक्षाकृत स्वच्छ था।

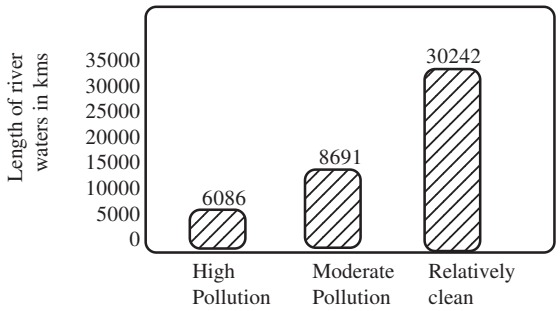

चित्र : जल के प्रदूषण स्तरों के अनुसार नदी प्रसारों की लंबाई (स्त्रोत: CPCB)

भारत के जलीय संसाधनों में प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं: शहरी तरल अपशिष्ट जिनमें अनुपचारित जल-मल एवं अवपंक (स्लज) अपशिष्ट आते हैं, औद्योगिक तरल अपशिष्ट, मवेशियों का स्नान कराया जल, लाशें, कृषि क्षेत्रों से सतही अपप्रवाह जल, ठोस अपशिष्ट भूमि भराव तथा शहरी एवं औद्योगिक अपशिष्टों के कूड़ा-घर स्थल। भारी धातुएं जैसे कैड्मियम, जिंक, सीसा, क्रोमियम तथा कॉपर सतही जलों तथा असवादों में और भू-जल में सांद्रित हो जाती हैं। जल के जैविक प्रदूषकों से हैजा, जठरांत्रशोथ तथा टाइफाइड जैसी महामारियां पैदा हो सकती हैं। भारी धातुएं खाद्य शृंखला में प्रवेश पाने पर घातक संप्रभाव पैदा कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, कैड्मियम एक संभावी गुर्दा आविषक है तथा पारा एक सक्षम तंत्रिकीय आविषक है।

भू-जल के संनिरीक्षण से उसमें नाइट्रेटों का सांद्रण बढ़ा हुआ पाया गया। इसका कारण जगह-जगह फैला हुआ वह सब अनियंत्रित जल-मल एवं ठोस अपशिष्ट है जो रिस-रिसकर नीचे भू-जल पटल पर पहुंच जाता है। जल संकट का एक और कारण है भवन-निर्माण कार्य के लिए नदियों की तली से बेतहाशा, रेत का निकाल लिया जाना। केन्द्रिय भू-जल बोर्ड की खोजों से पता चला है कि नदियों की तली से रेत निकालने से नदियों में, भू-जल का आधार-प्रवाह अधिक हो गया। रेत निकालने की जो प्रक्रिया है उससे जल में निलम्बित कणों का स्तर बढ़ जाता है। हमारे जल संसाधनों के प्रदूषण से जन-साधारण में बढ़ी चिंताओं को सामने रखकर गंगा कार्य योजना (Ganga Action Plan) का आरंभ हुआ है।

जल सुपोषण

नानाविध उद्योगों से जैसे कि चमड़ा-शोधशालाओं, बूचड़खानों, स्टार्च फैक्ट्रियों, पेपर-मिलों, दुग्ध संयंत्रों, कृषि भूमियों से निकले अपप्रवाह, जल निकायों में पोषक मात्राएं बढ़ाकर उन्हें अधि-सम्पन्न बना देते हैं जिससे उनकी उत्पादकता बढ़ जाती है। किसी भी पारितंत्र की उत्पादकता को उसके भीतर मौजूद उत्पादकों द्वारा किए जाने वाले प्रकाश-संश्लेषण की दर दर्शाती है। अधिक उत्पादकता वाली झील को जल-सुपोषित झील कहा जाता है। क्योंकि उसमें उत्पादकों की सघन समष्टि पायी जाती है, जो सतही जल पर तिरती हरी काई जैसी नजर आती है। विघटनकारी वायुजीवीय जीवाणु ऑक्सीजन की उपस्थिति में जैविक अपशिष्टों में से पोषकों को मुक्त कर देते हैं। ये पोषक उर्वरकों की तरह काम करते हैं और जलीय सूक्ष्मदर्शी पौधों जैसे शैवालों तथा अन्य पौधों जैसे डक-बीड, जल कुमुदिनी आदि की संख्या में अपार वृद्धि करने लग जाते हैं। शैवालों की भारी वृद्धि को शैवाल प्रस्फुटन (algal bloom) कहते हैं। जीवाणु-सक्रियता से जल में घुली ऑक्सीजन की बहुत मात्रा में खपत होती है और शैवाल तथा अन्य हरे पौधे-भी श्वसन में इसी ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं। इससे अंतत: मछलियों को मिलने वाली ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और मछलियां मरने लगती हैं। इससे रासायनिक चक्र तथा जल निकाय का पारितंत्र बदल जाता है। कालांतर में जल राशि घटती जाती और अंतत: विलीन हो जाती है। मगर जल सुपोषण केवल स्थिर जल निकायों में ही होता है प्रवाह-रत जल में नहीं होता। ऐसा इसलिए कि बहता हुआ जल अपशिष्टों तथा पोषकों को दूर-दूर बहाकर ले जाता है और उन्हें जहां-तहां फैले क्षेत्रों में वितरित कर देता है। अल्पपोषित झील में पोषण मात्रा कम होती है, उसमें उत्पादकता का स्तर नीचा रहता है तथा पानी साफ होता है जिसे पिया जा सकता है।

समुद्रीय प्रदूषण

प्रदूषकों का अंतिम गर्त समुद्र हैं। समुद्र में, ये प्रदूषक या तो सीधे ही अपशिष्टों के रूप में डाल दिए जाते हैं या जलधाराओं, नदियों, नहरों के द्वारा पहुंचते हैं या फिर दुर्घटना के कारण बिखराव के रूप में पहुंचते हैं, जैसे तेल-छितराव। समुद्री जल का अधिकांश प्रदूषण समुद्र तट रेखाओं पर होता है जहां बड़े शहर बंदरगाह तथा औद्योगिक केंद्र स्थापित हैं। महासागरों, समुद्रों, ज्वारनदों, लवण दलदलों तथा अन्य समान जल निकायों का प्रदूषण **समुद्री** अथवा **महासागरीय प्रदूषण** कहलाता है। भारत की कुल जनसंख्या का 25% भाग समुद्र तट-रेखा पर रहता है और वह समुद्री संसाधन पर ही निर्वाह करता है। वहां पर पाए जाने वाले प्रदूषक बहुत प्रकार के होते हैं जैसे **जल-मल, शहरी अपशिष्ट, औद्योगिक बहि:स्राव, उद्योगों से शीतलन प्रक्रियाओं के दौरान अपशिष्ट ऊष्मा, तेल छितराव, एवं समुद्री पोतों से निकले बहि:स्राव, जलपोत उद्योमों से निकले तेल और ग्रीज के बहि:स्राव तथा टैंकरों से दुर्घटनावश निकले तेल आदि।** समूचे विश्व के समुद्रों में हर वर्ष लगभग 210 मिलियन गैलन पेट्रोलियम पहुंचता है, जिसका कारण होता है तेल और उसके उत्पादों का निष्कर्षण, परिवहन तथा उपभोग। प्राकृतिक रिसाव के द्वारा भी हर वर्ष लगभग 180 मिलियन गैलन तेल समुद्र में पहुंचता रहता है। समुद्रों के भीतर पहुंचने वाली पेट्रोलियम की वार्षिक मात्रा का लगभग 8 प्रतिशत तेल बिखराव से आता है जबकि लगभग 3 प्रतिशत तेल ड्रिलिंग से आता है। विषैले रसायनों, रेडियोसक्रिय आइसोटोपों (समस्थानिकों) आदि से युक्त अपशिष्ट को सीलबंद पात्रों में बंद करके समुद्र में फेंक दिया जाता है। कभी-कभार इन ड्रमों को या तो ठीक से पैक नहीं किया होता या उन्हें समुद्र में सही स्थानों पर नहीं फेंका जाता। देर-सवेर ये ड्रम लीक करने लगते हैं या फूट जाते हैं। तेल के छितराव से जो निम्नतर क्वथनांक वाले ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन होते हैं, उन्हीं के कारण सबसे पहले बहुत सारे जलीय जीव और विशेषकर उनके लार्वा स्वरूप तुरंत मर जाते हैं। फिर भी, यह अच्छी बात है कि अधिकतर ऐसे आविषी पदार्थ एक या दो ही दिन में भाप बनकर वायुमण्डल में चले जाते हैं। तेल के कुछ अन्य प्रकार के रसायन सतह पर तैरते रह जाते हैं। ये तैरते तेल समुद्री पक्षियों के और खास तौर से डुबकी लगाने वाले पक्षियों के परों पर तथा कुछ समुद्री स्तनियों जैसे कि सील आदि पर चिपक कर उन पर परत जमा लेते हैं। तैल आवरण से प्राणियों की प्राकृतिक तापरोधि ता एवं उत्प्लावकता नष्ट हो जाती है और उनमें से अधिकतर या तो डूब जाते हैं या देह ऊष्मा की हानि से ठंड के मारे मर जाते हैं।

ताप प्रदूषण

ताप प्रदूषण तब होता है जब किसी जल निकाय का अथवा वायुमण्डल की वायु का तापमान बढ़ जाता है। इस कारण उस क्षेत्र का तापमान सामान्य स्तरों से हट जाता है। वायु तापमानों की अपेक्षा जल के तापमान सामान्यत: अधिक स्थिर होते हैं, अत: तापमान में तीव्र और सहसा परिवर्तनों के प्रति जलीय जीवों में अनुकूलन नहीं पाया जाता। यदि उष्णकटिबंधीय महासागरों का तापमान मात्र एक डिग्री ही नीचे आ जाए तो, ऐसा परिवर्तित पर्यावरण कुछ प्रवालों एवं प्रवाल भित्तियों के लिए घातक हो सकता है। जल के तापमान के बढ़ने से भी संवेदनशील जीवों पर भी इसी प्रकार के प्रभाव हो सकते हैं। **ताप प्रदूषण तब होता है जब अपशिष्ट ऊष्मा को जल निकाय के भीतर छोड़ दिया जाता है। दावानलों तथा ज्वालामुखियों जैसे प्राकृतिक कारणों से सहसा निकलने वाली ऊष्मा भी पर्यावरण में फैल जाती है। ताप प्रदूषण के मानवीय कारणों में दो मुख्य बाते हैं, एक तो वनस्पति आवरण का घट जाना और दूसरे वाष्प जेनेरेटरों से गर्म जल को बाहर छोड़ा जाना।** धातु प्रगालक, संसाधन मिलें, पेट्रोलियम शोध कारखाने, पेपर मिलें, खाद्य संसाधन फैक्ट्रियां तथा रसायन निर्माण संयंत्र आदि शीतलन हेतु पानी का काफी उपयोग किया करते हैं। अंतत: यह पानी गर्म हो जाता है और ऐसी उद्योग इकाइयों से बहि:स्रावों के रूप में बाहर निकलता है और जब यह गर्म जल किसी जल निकाय में पहुंचता है तब उस जल निकाय का तापमान बदल जाता है। इस कारण जल निकाय में घुली ऑक्सीजन का सांद्रण भी बदल जाता है क्योंकि गर्म जल में ऑक्सीजन कम घुलनशील होती है।

प्रत्येक स्पीशीज एक अनुकूलतम तापमान परास में ही जीवित रह सकती है। कुछ जीवों के लिए, जैसे कि कुछ मछलियों के लिए यह तापमान परास बहुत कम होता है जिससे जल के तापमान में तनिक सा भी आया परिवर्तन समस्याएं पैदा कर देता है। उदाहरणत: झीलों की मछलियां उस स्थान से दूर हट जाती हैं जहां का तापमान सामान्य से यदि 1-5°C भी ऊपर चला जाए, मगर नदियों की मछलियां 3°C की तापमान वृद्धि को सहन कर सकती हैं। उष्णतर जल से मछलियों में तनाव आ सकता है और उस स्थिति में परभक्षियों द्वारा उनका पकड़ा जाना आसान हो जाता है। तापमान परिवर्तन से जलीय निकाय के भीतर अन्य जीव स्वरूपों के लिए भी दशाएं बदल जाती हैं जिनके कारण इन जल निकायों के समस्त बायोटा (biota, अर्थात् जीवजात) में परिवर्तन आ जाता है।

चिरकालिक ताप प्रदूषण की समस्याओं का समाधान इस बात में है कि बिजली घरों तथा अन्य औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले गर्म जल तथा बहि:स्रावों को किसी एक धारक इकाई में छोड़ा जाए जहां ये ठंडा हो सके। ठंडा हो जाने के बाद ही इन्हें जल निकायों में छोड़ा जाए। अन्य विकल्प है कि उद्योगों से निकलने वाली अपशिष्ट ऊष्मा को जाड़ों के दिनों में भवन को गर्म करने जैसे अन्य कामों में लाया जाए।

मृदा प्रदूषण

सभी समस्त थल जीव जिनमें हम भी शामिल हैं, भूमि की सतही परत अर्थात् मृदा के साथ परस्परक्रिया करते हैं क्योंकि यही हमें जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं जैसे कि भोजन, आश्रय तथा वस्त्रादि प्रदान करती है। मृदा जो हमारा एक जीवनावश्यक कारक है समस्त भूमि पर मात्र छह इंच गहरी है। हमारी भूमि सतह का अपकर्ष यूं तो कुछ हद तक प्राकृतिक कारणों से भी होता है मगर हम मनुष्य इसे तीन प्रकार से खराब करते हैं- इसका उपयोग करके (कृषि तथा विकास क्रियाकलाप), इसमें से चीजें बाहर निकाल कर (खनन तथा वनोन्मूलन), तथा इसके भीतर पदार्थों को डालकर (अपशिष्ट निपटान)
अपने भूक्षेत्रों की ओर हमारी बेरुखी से हुए कुछ नुकसान इस प्रकार हैं-

1. जैव-विविधता की हानि (Loss of Biodiversity)

सतत् बढ़ती जाती मानव जनसंख्या के लिए कृषीय तथा विकास आवश्यकताओं और उन्हीं के साथ उसकी अभिलाषाओं तथा लिप्साओं की पूर्ति के लिए भूमि प्रदान करने हेतु कितने ही बड़े-बड़े क्षेत्रों से वन काट दिए जिससे प्राकृतिक वनस्पतिजात एवं प्राणिता नष्ट हो गयी। **''इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर'' (IUCN) के अनुसार अनुमान लगाया गया है कि सन् 2050 तक लगभग 50,000 पादप स्पीशीज विलुप्त हो जाएंगी या संकटापन्न स्तर तक पहुंच जाएंगी। वैज्ञानिकों के अनुसार इस समय 4,500 प्राणि स्पीशीज तथा 20,000 पादप स्पीशीज संकटापन्न मानी जा रही है।**

2. मृदा अपरदन (Soil Erosion)

यह वह प्रक्रिया है जिसमें मृदा घटकों का और विशेषकर उपरिमृदा (topsoil) के कणों का ढीला होना, अलग-अलग हो जाना तथा वहां से हटा लिया जाना शमिल है। मृदा अपरदन दो साधनों - तेज हवाओं तथा बहते पानी से होता है। मगर ये दोनों कारक तभी कार्यशील हो पाते हैं जब भूमि सतह से वनस्पति आवरण समाप्त हो चुका होता है। उपरिमृदा नदियों की तली में आकर जम जाती है, यानी जल निकायों में गाद का जमना होता है।

3. अम्लता तथा क्षारता (Acidity and Alkalinity)

मृदा में अम्लता अथवा क्षारता के बढ़ जाने से उसकी उर्वरता कम हो जाती है तथा कुछ फसलों के लिए यह अच्छा नहीं होता। जब मृदा में हाइड्रोजन आयन सांद्रण बढ़ता है तब वह अम्लीय हो जाती है। यदि मौसम सूखा रहा और वर्षा कम हुई तो कैल्सियम कार्बोनेट जैसे खनिज तथा क्षारीय यौगिक मिट्टी में जमा हो जाते हैं। इससे मृदा की क्षारता बढ़ जाती है। मृदा की इस प्रकार की दशा के मुख्य कारण हैं भूमि का बिना सोचे-समझे उपयोग और अनुचित कृषि प्रथाएं- और ये दोनों ही मानव-जनित कारण हैं।

4. अपशिष्ट-निक्षेप द्वारा भूमि प्रदूषण (Land Pollution by Waste Deposition)

हम अपनी भूमि को एक चरम कूड़ादान कह सकते हैं क्योंकि मुख्यत: मानव क्रियाकलापों से ही जन्मा कूड़ा इसी के अंदर गाढ़ा अथवा इसी में फेंका जाता है। अपशिष्ट निपटान एक प्रमुख समस्या है और भारत में प्रति व्यक्ति अपशिष्ट-जनन लगातार बढ़ता जा रहा है। जैसा कि अन्य एशियाई देशों में हो रहा है भारत में भी अधिकतर ठोस अपशिष्ट भूमि भराव में डाले जा रहे हैं। अपशिष्टों को अक्सर यूं ही डाल दिया जाता है और इस तरह से निपटान के तरीके सफाई भूमि-भरावों के लिए आधुनिक आवश्यकताओं की अनदेखी करते हैं। भूमि-भरावों में सभी प्रकार का अपशिष्ट डाल दिया जाता है और जब पानी उनमें से होकर रिसता है तब वह संदूषित हो जाता तथा और आगे परिवेशी क्षेत्रों में प्रदूषण फैलाता है। भूमि-भरावों के द्वारा होने वाला भूमि एवं जल संदूषण निक्षालन (लीचिंग) कहलाता है। खुला, अनुपचारित और अपृथक्कृत ठोस अपशिष्टों को यूं ही खुले में डाल दिया जाता है। ऐसे कूड़ा-स्थलों से होकर वर्षा जल के

अपप्रवाह से निकटवर्ती भूमि तथा जल निकायों का संदूषण होता है। इनसेनेरेटरों (दाहकों) के भीतर जलाए जानेवाले अपशिष्ट की राख में कुछ खतरनाक आविष भरे हो सकते हैं जैसे डाइऑक्सिन्स (dioxins) तथा भारी धातुएं। इसी राख को जब भूमि-भरावों में गाड़ दिया जाता है तो यही राख आस-पास के क्षेत्रों में निक्षालित हो जाते हैं और प्रदूषण पैदा करती है।

विभिन्न स्रोतों से पैदा होने वाले मुख्य अपशिष्ट प्ररूप जिनसे हमारे भू-क्षेत्र प्रदूषित होते हैं।

शहरी अपशिष्ट	औद्योगिक अपशिष्ट	घरेलू अपशिष्ट	ग्रामीण अपशिष्ट	नाभिकीय संयंत्र अपशिष्ट
नगर निगमी; जल-मल; औद्योगिक बहि:स्राव; घरेलू बहि:स्राव; अस्पताल अपशिष्ट;	स्लैग, ब्राइन, चूना स्लज; कीचड़; धातु; कांच; लौह एवं अलौह धातु; ऊन, सूत तथा कागज का कचरा; फ्लाई ऐश; प्लास्टिक्स; चर्मशालाओं तथा लघु उद्योगों से निकला अपशिष्ट; अपशिष्ट जल बहि:स्राव	रसोई से निकला जैविक अपशिष्ट क्राकरी, टिन के डिब्बे, प्लास्टिक के डिब्बे, शीशियां थैले; कांच की शीशियां; फटे-कपड़े लत्ते; कागज के टुकड़े, गत्ते के डिब्बे; राख	पीड़कनाशी शाकनाशी; कृषि अपप्रवाह	रेडियोसक्रिय खतरनाक अपशिष्ट

मृदा प्रदूषण तथा स्वास्थ्य (Soil pollution and health)

बहुत सारे ऐसे मामले सामने आए हैं जिनमें प्रभावित क्षेत्रों में पक्षियों, जानवरों तथा मानवों में DDT तथा एण्डोसल्फान एवं अन्य पीड़कनाशी तथा रसायनों के ऊंचे स्तर पाए गए। इससे स्पष्ट होता है कि खतरनाक पीड़कनाशी खाद्य-शृंखला में प्रवेश कर गए और जैवसंचित एवं जैवआवर्धित हुए थे। अत: यह ध्यान में रखाना बहुत जरूरी है कि किसी क्षेत्र में होने वाले मृदा प्रदूषण से वहां के तमाम निवासी प्रभावित होते हैं जिनमें पौधे, जानवर और अन्य-जीव जंतु शामिल हैं और ऐसा होना आसानी से पलट कर उल्टा नहीं जा सकता।

मानव स्वास्थ्य पर पीड़कनाशियों का प्रभाव अत्यंत गंभीर होता है। पीड़कनाशियों के बढ़ाए गए स्तरों से उद्भासित होने पर तीव्र प्रभाव अपेक्षाकृत जल्दी हो जाते हैं। इनमें होने वाले हानिकर प्रभाव सिर दर्द, चक्कर आना, चिड़चिड़ाहट और बेहोशी से लेकर तंत्रिकातत्र में गंभीर गड़बड़ी एवं मृत्यु तक के हो सकते हैं। दीर्घकालिक प्रभावों में लम्बी बीमारियों जैसे कि कैंसर का हो जाना शामिल है।

जयपुर के सवाई मान सिंह मेडिकल कालेज एवं हास्पिटल के वैज्ञानिकों ने स्त्रियों पर पीड़कनाशियों के उद्भासन के प्रभावों का अध्ययन किया और उन्होंने पाया कि पीड़कनाशियों से स्त्रियों की थाइरॉइड ग्रंथि की क्रिया में बाधा आती है।

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि एक संचार-माध्यम है। ध्वनि न हो तो हमारा दैनिक जीवन लगभग असंभव सा हो जाएगा। परंतु यदि ध्वनि परेशान करने लगे एवं हानिकारक हो जाए तो उसे शोर कहा जाता है। परिभाषा के रूप में शोर, ध्वनि के कोई भी ऐसे अवांछित तथा अत्यधिक ऊंचे स्तर होते हैं जिनसे परेशानी होती है, तनाव होता है अथवा श्रवण क्षमता आहत होती है।

ध्वनि स्तरों के डेसिबल मापक्रम पर कुछ उदाहरण और उनसे मनुष्यों पर पड़ने वाले प्रभाव

क्रियाकलाप	ध्वनि दाब (dbA)	बोध प्राप्त ध्वनि उच्चता	प्रभाव
रॉकेट इंजन	180	पीड़ादायी	कान का पर्दा फटना
जेट विमान की उड़ान आरम्भ (25 मीटर दूर)	150	पीड़ादायी	कान का पर्दा फटना
वायुयान केरियर डेक	140	पीड़ादायी	
जेट विमान का उड़ान भरना (100 मीटर दूर), ईंअर-फोन उच्च स्तर पर	130	पीड़ादायी	मानव पीड़ा अवसीमा
थंडर-क्लैप, कमड़ा मिल लूम, सीधा होता रॉक-म्यूजिक, जेट उड़ान-आरंभ (161 मीटर दूर) साइरेन (निकट से), चेन आरा मशीन	120	असुविधाजनक उच्चता	
स्टील मिल, रिवेटिंग, कारों आदि के हॉर्न 1 मीटर की दूरी पर, कान के पास रखा स्टीरियो	100	असुविधाजनक उच्चता	
जेट विमान की उड़ान भरना (305 मीटर दूर), भूमिगत रास्ता, आऊटबोर्ड मोटर, बिजली द्वारा चालित लॉन-मूवर, मोटर साइकिल 8 मीटर दूर, फार्म ट्रैक्टर, प्रिंटिंग संयत्र जैकहैमर, कूडा ट्रक	100	असुविधाजनक उच्चता	गम्भीर श्रवण हानि (8 घंटे)
व्यस्त शहरी बाजार, डीजल ट्रक, फूड ब्लेंडर, कपास कातने की मशीन	90	बहुत ऊंचा	श्रवण हानि (8 घंटे) वार्तालाप बाधा
कचरा निपटान, कपड़ा वाशिंग मशीन, साधारण फैक्ट्री, मालगाड़ी ट्रेन 15 मीटर पर, डिशवाशर	80	बहुत ऊंचा	संभावित श्रवण क्षति
खुला यातायात 15 मीटर पर, वैक्युअम क्लीनर, शोरपूर्ण दफ्तर या पार्टी	70	साधारण उच्चता	परेशानी
रेस्तरां, साधारण दफ्तर में वार्तालाप, पीछे से आ रहा संगीत	60	साधारण उच्चता	बाधक
शांत उपनगर (दिन के समय) बैठक के कमरे में वार्तालाप	50	साधारण उच्चता	शांत
पुस्तकालय, धीमा पृष्ठ संगीत	40		
शांत ग्रामीण क्षेत्र (रात्रिकालीन)	30		
फुसफुस वार्तालाप, पत्तियों की खड़खड़ाहट	20		बहुत शांत
श्वास	10		
	0		श्रवण अवसीमा

रेडियोसक्रियता द्वारा प्रदूषण

विकिरण का निकलना सभी प्रकार के पदार्थों एवं परमाणुओं का सहज लक्षण है। यह एक ऐसी परिघटना है जिसमें किसी भी पदार्थ अथवा स्थान में से तीव्र गति करते हुए कणों के स्वरूप में अथवा तरंगों के रूप में ऊर्जा का प्रचालन होता रहता है। इन गतिशील कणों को कणिकीय विकिरण कहते हैं तथा तरंगाों को विद्युतचुम्बकीय तरंगें अथवा विकिरण कहते हैं। सभी प्रकार के विकिरण ऊर्जा के ही स्वरूप होते हैं। लंबे तरंगदैर्ध्यों वाले विकिरणों में निम्न बारबारता, निम्न ऊर्जा तथा निम्न स्तर की वेधन क्षमता होती है। लघुतर तरंगदैर्ध्यों वाले विकिरणों में उच्च बारंबारता, उच्च ऊर्जा तथा उच्च वेधन क्षमता होती है।

रेडियोसमस्थानिक (radioisotopes) इस प्रकार के रासायनिक तत्व होते हैं, जिनके एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में बदलते हुए उनके नाभिकों में से स्वत: ही उच्च-ऊर्जा विद्युत चुम्बकीय विकिरण अथवा कणिकीय विकिरण निकलते हैं । रेडियो समस्थानिकों को रेडियोन्यूक्लाइड्स (radionuclides) भी कहते हैं। रेडियोसक्रिय पदार्थों के विघटन के इस गुणधर्म को रेडियोसक्रियता कहते हैं। **नाभिकीय विकिरणों के तीन मुख्य प्रकार पाए जाते हैं : (i) धनात्मक आवेश ऐल्फा कण, (ii) ऋणात्मक आवेश वाले बीटा कण तथा, (iii) गामा किरणें जिनमें कोई आवेश नहीं होता।** कुछ रेडियोसक्रिय परमाणुओं से न्यूट्रॉन कण भी निकलते हैं। इन कणों में आवेश तो नहीं होता मगर वे पदार्थ में से होकर आ-जा सकते हैं। UV (ultra-violet) अर्थात् पराबैंगनी किरणें एवं X-किरणें अन्य प्रकार के विकिरण हैं। इन विकिरणों की वेधन क्षमता अलग-अलग होती है (चित्र)। गामा किरणें, X-किरणें तथा न्यूट्रॉन अत्यधिक ऊर्जा-युक्त होते हैं तथा इनके रास्ते को रोकने के लिए कंक्रीट अथवा सीसे की शील्ड की जरूरत होती है। बीटा कण त्वचा में से वेध न कर सकते हैं। ऐल्फा कणों में सबसे कम वेधन शक्ति होती है और मात्र एक कागज से ही रोके जा सकते हैं।

रेडियोसमस्थानिकों, उनसे निकले विकिरण-प्ररूपों एवं उनकी अर्ध-आयुओं के कुछ उदाहरण।

[अर्ध-आयु वह काल होता है जिसमें किसी रेडियोसक्रिय पदार्थ में उसके शुरू काल में मौजूद परमाणुओं की ठीक आधी संख्या नष्ट हो जाती है।]

समस्थानिक	निकलने वाले विकिरण	अर्ध-आयु
पोटैशियम-42	ऐल्फा, बीटा	12.4 घंटे
आयोडीन-131	बीटा, गामा	8 दिन
कोबाल्ट-60	बीटा, गामा	27 वर्ष
हाइड्रोजन-3 (ट्राइटियम)	बीटा	12.5 वर्ष
स्ट्रॉन्शियम-90	बीटा	28 वर्ष
कार्बन-14	बीटा	5,370 वर्ष
प्लूटोनियम-239	ऐल्फा, गामा	24,000 वर्ष
यूरेनियम-235	ऐल्फा, गामा	71 करोड़ वर्ष
यूरेनियम-238	ऐल्फा, गामा	4.5 अरब वर्ष

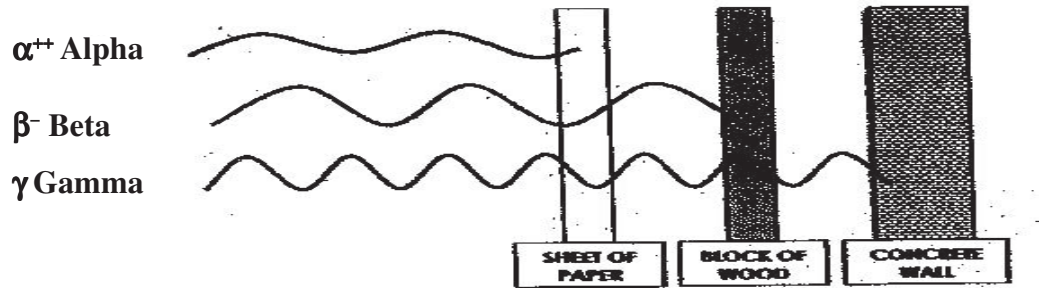

चित्र : रेडियोसक्रिय पदार्थों से निकलने वाली ऐल्फा, बीटा तथा गामा किरणों की वेधन क्षमता

विकिरणों के जैविकीय प्रभाव चिंताजनक होते हैं। विकिरणों से होने वाले आयनीकरण के द्वारा आनुवंशिक पदार्थ डी.एन.ए. तथा अन्य जैव-अणुओं की संरचना बदल जाती है। रासायनिक संरचना में होने वाले इस परिवर्तन से इन अणुओं का कार्य स्तर भी बदल जाता है।

जैव अणुओं में होने वाले परिवर्तन कोशिकाओं को परिवर्तित कर देते हैं जो या तो मर जातीं या फिर अंतत: अपसामान्य रूप में कार्य करती हैं। इस कारण चिरकालिक् स्वास्थ्य समस्याएं पैदा हो जाती हैं। यदि प्रभाव गंभीर नहीं हुए तो उनसे कई प्रकार की दशाएं पैदा हो जाती हैं।, जैसे कि एनर्जी, दमा, मामूली पेशीय अथवा हड्डी-दोष, उच्च रक्त दाब अथवा अन्य गौण आनुवंशिक विपथन। गंभीर परिणामों में आते हैं कैंसर और ऐसे आनुवंशिक दोष जो अगली पीढ़ियों में चलते जाते हैं। **त्वचा का कैंसर अधिकतर UV किरणों से पैदा होता है। समतापमंण्डलीय ओजोन के खाली हो जाने से पृथ्वी पर पहुंचने वाली UV किरणों की मात्रा बढ़ गई है, जिससे त्वचा के कैंसर की सम्भावना ज्यादा हो गई है। यदि विकिरणों द्वारा उद्भासन थोड़े ही समय का रहा तो शरीर की उद्भासित कोशिकाएं कुछ समय बाद फिर से ठीक हो सकती है।** परन्तु यदि उद्भासन दीर्घकालिक रहा तब कोशिकाओं की स्वास्थ्य लाभ क्रियाविधियां, हो सकता है क्षति को सुधार सकने में पर्याप्त न हों। यही कारण है कि व्यक्ति को बहुत ज्यादा बार-बार एक्स-रे नहीं कराने चाहिए। हम हर रोज प्राकृतिक तथा मानव-निर्मित स्रोतों से परमाणु विकिरणों द्वारा उद्भासित हो सकते हैं।

प्राकृतिक पृष्ठभूमि विकिरणों का लगभग आधा भाग अंतरिक्ष से आने वाली अंतरिक्ष किरणों से प्राप्त होता है। अन्य प्राकृतिक स्रोतों में आते हैं रेडियोसक्रिय शैल (चट्टानें) तथा मृदाएं। मानव स्रोतों से भी काफी योगदान होता है। मानव द्वारा रेडियोसक्रियता के मुख्य उपयोगों में आते हैं- चिकित्सा निदान के लिए एक्स-रे का उपयोग, शोध क्रियाकलापों में रेडियो- समस्थानिकों का उपयोग, तथा नाभिकीय रीएक्टरों द्वारा विद्युत-ऊर्जा का उत्पादन।

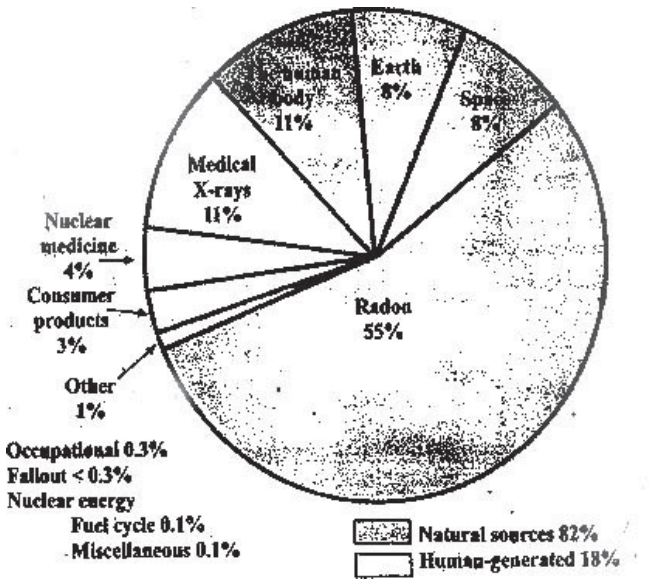

चित्र : विकिरणों के प्राकृतिक तथा मानव-जनित स्रोत

रेडियोसक्रिय पदार्थ के उपयोग से पूर्व उसके खनन, मिलिंग तथा संसाधन की प्रक्रियाएं होनी होती हैं। किसी नाभिकीय रीऐक्टर में रेडियोसक्रिय पदार्थ के उपयोग से पूर्व कितने ही ऐसे चरण आते हैं जिनमें नाभिकीय अपशिष्ट उत्पन्न होता है। ऐसी आशा की ही जानी चाहिए कि जब भी नाभिकीय रीऐक्टरों में बिजली का उत्पादन हो रहा होगा वहां पर रेडियोसक्रिय अपशिष्ट तो बनेंगे ही। यूरेनियम के खनन के दौरान जो अयस्क कचरा रह जाता है वह भी खतरे से भरपूर होता है।

यह बहुत आवश्यक है कि निकले अपशिष्टों को सुरक्षित रूप में निपटाया अथवा भण्डारित किया जाए। सामान्यत: रेडियोसक्रिय अपशिष्टों को जमीन के भीतर दबा दिया जाता है। इस काम के लिए बहुत सावधानी से स्थान को चुना जाता है ताकि इन अपशिष्टों की जमीन के भीतर अन्यत्र-गति न हो और न ही ये अन्य पर्यावरण अंतराप्रावस्थाओं (वायु और जल) में पहुंच सकें।

विभिन्न प्रकार के विकिरण एवं शरीर पर पड़ने वाले उनके प्रभाव

विकिरण के प्ररूप	गुणधर्म	शरीर पर प्रभाव
α-कण	❖ वायु में केवल कुछ ही सेंटीमीटर पार कर सकते हैं, तथा सजीव ऊतकों में केवल 30 μnm (अर्थात् लगभग 3 कोशिकाएं पार कर सकते हैं)	❖ सामान्यता त्वचा में से नहीं घुस पाते ❖ डी.एन.ए के एक या दोनों सूत्रों को खण्डित कर देते हैं
-कण	❖ वायु में लगभग 8 m तक तथा सजीव ऊतक में लगभग । cm तक पार कर सकते हैं ❖ त्वचा को बेध सकते मगर उसके नीचे के ऊतकों में नहीं पहुंच पाते	❖ त्वचा का कैंसर और आंख में कैटेरेक्ट (सफेद मोतिया) हो जाता है
-किरणें	❖ वायु में लगभग 100m पर सकती हैं, त्वचा को आसानी से बेध सकती और शरीर में से गुजर सकती हैं।	❖ कोशिकाओं में उत्परिवर्तन पैदा करती है
X-किरणें	❖ बहुत दूर तक पार कर सकती हैं	❖ शरीर के ऊतकों में से गुजर जाती हैं मगर हड्डियों में से नहीं
पराबैंगनी किरणें	❖ इनमें X-किरणों से अपेक्षाकृत कम ऊर्जा होती है	❖ त्वचा का कैंसर हो सकता है